असग़र वजाहत

अतीत का दरवाज़ा



अतीत का दरवाज़ा

अतीत का दरवाज़ा

असग़र वजाहत

राजपाल

ISBN : 9789386534378
प्रथम संस्करण : 2018
ATEET KA DARWAZA (Travelogue) by Asghar Wajahat

राजपाल एण्ड सन्ज़
1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट-दिल्ली-110006
फोन: 011-23869812, 23865483, फैक्स: 011-23867791
website : www.rajpalpublishing.com
e-mail : sales@rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpaland sons

क्रम

भूमिका
जॉर्डन : अतीत का दरवाज़ा
डेड सी
साम्राज्य के टुकड़े
पुराने क़स्बे में
अद्‌भुत सम्भावना
पेत्रा के सामने
सोशल टूरिज़्म
जीवन से जूझते
मारामारोश : योरोप का मध्यकाल
चीकसैरेदा
मध्य एशिया के हूण
तानाशाह का संदेश
अंधा औद्योगीकरण
मारामारोश की तरफ़
कार और ट्रेन की दौड़
जिप्सी : योरोप में मानवाधिकार
शुर देश्त्या
मिच का स्वाद
प्रचार के आयाम
बने रहने की लालसा
‘लॉग ट्रेन’
मैक्सिको : कोयोयकन की कबूतरी

भूमिका

छायादार पेड़

आजकल यात्रा संस्मरण लिखना कुछ मुश्किल हो गया है, क्योंकि सूचनाएँ प्राप्त करने की सुविधाएँ उपलब्ध हैं। कोई भी व्यक्ति घर बैठे इन्टरनेट पर पूरी दुनिया की सैर कर सकता है। किसी भी शहर और वहाँ की इमारतों को देख सकता है। तमाम तरह की जानकारियाँ प्राप्त हो सकती हैं। घर बैठे विश्व के बड़े संग्रहालयों को देखा जा सकता है। इन्टरनेट युग से पहले यात्रा संस्मरणों का जो स्वरूप था, वह अब बदल चुका है। केवल शहरों और इमारतों या यात्रा के सामान्य विवरण पाठक को आकर्षित नहीं कर पाते। आज के यात्रा संस्मरण में पाठक वह देखना चाहता है जो उसे किसी दूसरे माध्यम से नहीं दिखाई पड़ता, इसलिए यात्रा संस्मरण लिखने वाले का काम काफ़ी मुश्किल हो गया है। 'ग्लोबल विलेज़' बन जाने के कारण देश एक-दूसरे के इतने निकट आ गये हैं कि सब कुछ जाना-पहचाना लगता है।

मुझे याद है आज से लगभग कोई चालीस साल पहले की बात है, मैं अमेरिका गया था और वहाँ तीन महीने रहा था। यह मेरी पहली विदेश यात्रा थी। उस ज़माने में हिन्दी की एक बहुत प्रतिष्ठत पत्रिका दिनमान के सम्पादक प्रसिद्ध हिन्दी कवि और पत्रकार रघुवीर सहाय थे। मैंने सहाय जी से कहा था कि मैं अपनी अमेरिकी यात्रा में दिनमान के लिये कुछ यात्रा संस्मरण लिखना चाहता हूँ। मेरे इस प्रस्ताव पर सहाय जी ने पूछा था कि क्या जाने से पहले या यात्रा के दौरान मैंने यह तय कर लिया था कि मैं इस यात्रा के संस्मरण लिखूँगा। उस समय सहाय जी का यह सवाल मुझे कुछ अटपटा लगा था, लेकिन आज यह सवाल बहुत उचित लगता है। यात्रा के कई उद्देश्य हो सकते हैं। कुछ लोग सैर-सपाटे के लिये यात्राएँ करते हैं। कुछ व्यापार से सम्बन्धित यात्राओं पर जाते रहते हैं। बहुत से लोग अपने सम्बन्धियों से मिलने भी विदेश जाते हैं। विदेश में शिक्षा प्राप्त करना तो अब आम बात हो गयी है। मुद्दा यह है कि यात्रा करने से पहले यदि यह नहीं तय किया गया कि यात्रा का उद्देश्य क्या है तो यात्रा संस्मरण लिखना कठिन हो जायेगा।

आज यात्रा संस्मरण लिखने वाला लेखक न तो मध्यकालीन पर्यटकों की तरह पूरा जीवन यात्रा में बिता सकता है और न यात्राएँ करने के लिये नयी-नयी भाषाएँ सीख़ सकता है। मध्यकाल या उससे पहले यात्राएँ करना जितना जोख़िम भरा हुआ करता था, उतना अब नहीं है। कुछ घंटों के अन्दर आदमी दुनिया के इस कोने से उस कोने में पहुँच

सकता है।

आज के यात्री के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह जिस देश की यात्रा कर रहा है उस देश के समाज और संस्कृति के उन पक्षों पर ध्यान दे जो सामान्य रूप से दिखाई नहीं पड़ते। इससे पहले भी मैंने कई जगह लिखा है कि मैं टूरिस्ट नहीं बल्कि सोशियल टूरिस्ट हूँ। आज सोशियल टूरिस्ट हुए बिना यात्रा संस्मरण लिखना बहुत कठिन है। सोशियल टूरिस्ट का अर्थ दरअसल ऐसे पर्यटन से है जो इमारतों और सड़कों, संग्रहालयों या अकादमियों, होटलों या क्लबों, मनोरंजन और खेलकूद तक सीमित न हो। सोशियल टूरिस्ट देश और समाज की छिपी हुई राशियों को समझने की कोशिश करता है। बहुत सामान्य से सामान्य लगने वाले 'ऑब्ज़र्वेशन' दरअसल सामाजिक संरचना और लोगों के मनोविज्ञान को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं। उदाहरण के लिये अपनी ईरान यात्रा के दौरान मैंने देखा था कि वहाँ कुत्ते पालने का रिवाज़ नहीं है। सड़कों पर कुत्ते नहीं दिखाई देते। यह समझ में आने वाली बात है, क्योंकि इस्लाम में कुत्ते को गन्दा जानवर माना जाता है लेकिन ईरान में मैंने बहुत बड़ी और महँगी कारों के अन्दर यदा-कदा कुत्ते देखे। इसके अतिरिक्त कभी-कभी अत्यन्त गरीब और सड़क पर रहने वाले ख़ानाबदोश लोगों के पास भी कुत्ते नज़र आये। इससे यह समझने में मदद मिली कि सामान्य से हटकर ईरान में या तो बहुत धनवान लोग रह सकते हैं या बहुत गरीब लोग। साधारण मध्यवर्ग के लोग सामान्य से अलग नहीं हो सकते।

जब मैं अमेरिका गया था तब आम तौर पर शहरों में प्रायः अफ्रीकी मूल (ब्लैक) के लोग छोटे-मोटे काम करते दिखाई पड़ते थे। रात के समय ये लोग अक्सर राहगीरों को रोककर उनसे पैसे माँगते थे। मैं इस बात से बहुत परेशान था। एक दिन अचानक एक भारतीय मूल के व्यक्ति से इस समस्या के बारे में बात हुई तो उसने बताया कि ब्लैक लोगों से बचने का एकमात्र रास्ता यह है कि उन्हें सम्मान दिया जाये। मैंने यह नुस्ख़ा आज़मा कर देखा। एक रात एक लम्बे-चौड़े और नशे में धुत्त ब्लैक ने मेरा रास्ता रोक कर जब पैसे माँगे तो मैंने उसे 'सर' कहकर बातचीत शुरू की। एक वाक्य में दो बार 'सर' का प्रयोग किया और नतीजा यह निकला कि उसने मुझे छोड़ दिया। सन् 1974 के बाद मैं 2000 में दूसरी बार अमेरिका गया तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बड़ी संख्या में 'ब्लैक' वर्किंग मिडिल क्लास के लोग दिखाई पड़े। इसका सीधा मतलब है कि अमेरिकन समाज ने 'ब्लैक' समुदाय को आगे आने का मौका दिया है।

कभी-कभी कहा जाता है कि यदि आप किसी देश की भाषा नहीं जानते तो आप वहाँ के समाज को कैसे समझ सकते हैं? टूरिस्ट यदि भाषा जानता है तो उसे बहुत अधिक जानकारियाँ मिल सकती हैं। लेकिन भाषा न जानने के बाद भी समाज का गहन निरीक्षण भी समाज और देश को समझने में मददगार सिद्ध होता है। उदाहरण के लिये तेहरान के एक चौराहे पर मैंने एक युवक को पार्क की एक बेंच पर बैठे देखा था। इस युवक ने बहुत आधुनिक किस्म के कपड़े पहन रखे थे। उसके बाल भी बहुत लेटेस्ट फैशन के थे। वह कानों में एयर फ़ोन लगाये अपने मोबाइल से कुछ सुन रहा था। उसके हुलिये को देखकर यह अनुमान होता था कि वह शायद पश्चिमी संगीत सुन रहा होगा। युवक की आँखें बन्द थीं और सबसे अद्भुत बात यह थी कि उसके हाथ में तस्बीह (नमाज़ आदि के

बाद पवित्र नाम गिनने के लिये प्रयोग किये जाने वाली माला) थी। पूरा दृश्य यह बताता था कि युवक के लिये धर्म का क्या अर्थ है। इसी तरह तेहरान विश्वविद्यालय में ज़ुम्मे की नमाज़ के लिये जाने वाले लोगों को देखकर भी उस समाज के धार्मिक आधार का पता चला था। नमाज़ के लिये अन्दर जाने के दो गेट थे। एक गेट से साधारण लोग अन्दर जा रहे थे जिनकी तलाशी आदि ली जा रही थी और दूसरे गेट से बड़ी-बड़ी कारें अन्दर जा रही थीं। पहले गेट से अन्दर जाने वाले निम्न या निम्न मध्यवर्ग के लोग ही लगते थे।

कुछ लोग शायद यह मानते हैं कि घूमने के लिये बहुत पैसा चाहिए होता है, लेकिन मेरे विचार से पैसे से अधिक इच्छा और लगन आवश्यक है। यदि कोई व्यक्ति यात्रा करना चाहता है तो उसे सैकड़ों मददगार मिल जाते हैं और वह कम-से-कम पैसे में या कभी-कभी तो बिना पैसे के भी यात्राएँ कर सकता है। उदाहरण के लिये मैं इस्फहान शहर के एक होटल में ठहरने गया। होटलवाले ने कमरे का जो किराया बताया वह मेरे हिसाब से बहुत अधिक था। मैंने उससे कहा कि मैं इतना किराया नहीं दे सकता। जब मैं जाने लगा तो उसने मुझे रोका और कहा कि मैं केवल पाँच डॉलर देकर डॉरमेट्री में भी रह सकता हूँ। मैंने डॉरमेट्री में रात बितायी और सोचा कि काफ़ी कम पैसे में रात बीत गयी। कमरे से बाहर निकला तो देखा होटल के बरामदे में ज़मीन पर साइकिलवाले टूरिस्ट अपने-अपने स्लीपिंग बैगों में घुसे सो रहे हैं। मैंने सोचा, 'इन लोगों ने मुझसे भी कम पैसे में रात बितायी होगी।' शहर में घूमता हुआ एक पार्क में पहुँचा तो देखा एक टूरिस्ट पेड़ के नीचे स्लीपिंग बैग में सो रहा था। निश्चित रूप से उसने सबसे कम पैसे या मुफ़्त में रात बितायी होगी। कहने का मतलब यह है कि सबके लिये सब तरह की गुंजाइश होती है, इसलिए यात्रा करने वालों को, पर्यटकों को कम पैसे होने के कारण घबराना नहीं चाहिए। एक प्रसिद्ध शे'र है—

सफ़र है शर्त मुसाविर नवाज़ बहुतेरे
हज़ार-हा शजरे-सायादार राह में हैं।

मतलब, शर्त यह है कि कोई सफ़र करे। उसे नवाज़ने वाले अर्थात् उसकी सहायता करने वाले अनेकों मिल जायेंगे। उसी प्रकार जैसे रास्ते में हज़ारों छायादार पेड़ मिलते हैं।

दिल्ली **—असग़र वजाहत**
17.09.17

जॉर्डन
अतीत का दरवाज़ा

लगता है मेरे ऊपर उनका कर्ज़ है, भारी देनदारी है जिन्होंने ईसा से लगभग दो सौ वर्ष पहले सीरिया में पेत्रा नाम का शहर बसाया था। उन कलाकारों के ऋण से मैं उस वक्त तक मुक्त नहीं हो सकता जब तक उनकी महानता का गुणगान न कर लूँ। वर्तमान में पेत्रा, जॉर्डन देश की सीमा में है और जॉर्डन की राजधानी अम्मान से 245 किलोमीटर दूर है। कई जगह लिखा गया है कि मरने से पहले आदमी को जो कुछ जगहें देख लेनी चाहिए उनमें 'पेत्रा' भी एक है। पेत्रा को अरबी भाषा में बतरा कहा जाता है जो अंग्रेज़ी में पेत्रा हो गया है। अकल्पनीय सौन्दर्य और महानतम् प्रतिभा का अनोखा मिश्रण पेत्रा को मनुष्य की कला प्रतिभा के उच्चतम शिखर पर स्थापित करता है। पेत्रा को देखकर यह विश्वास होता है कि मनुष्य के अन्दर ऐसी महान और विराट सम्भावनाएँ छिपी हुई हैं, जिनकी कल्पना करना भी कठिन है।

पेत्रा तक आने की यात्रा जॉर्डन की राजधानी अम्मान से शुरू हुई थी। अम्मान जाने वालों को बताया जाता है कि अम्मान के टैक्सी चालक काफ़ी धाँधली करते हैं। उल्टा-सीधा किराया बताते हैं और अगर उन्हें बड़ा नोट दे दिया तो बकाया पैसे वापस नहीं करते। ये सब जानने के बावजूद अम्मान के टैक्सी ड्राइवर ने मुझे होटल पहुँचाने में ठग लिया था। बहरहाल, यह तो होता है। 'ग़ालिब' कह ही गये हैं, "जिसको हो जान-ओ-दिल अज़ीज़ उसकी गली में जाये क्यों?" तो यहाँ कह सकते हैं कि जिसे टैक्सीवालों की ठगी से डर लगता हो वह जॉर्डन जाये ही क्यों?

जॉर्डन यात्रा की प्रेरणा डॉ. दिनेश शर्मा से मिली थी। आप पूछेंगे डॉ. दिनेश शर्मा कौन हैं तो मैं जवाब दूँगा कि आप यदि उनको नहीं जानते तो अपना नुक़सान कर रहे हैं। एक प्रसिद्ध वास्तुशास्त्री और चिकित्सक होने के साथ-साथ वे दुनिया देखे, शौकीन तबीयत, मस्तमौला, साहित्य और सौन्दर्य प्रेमी हैं। वे अपने किसी काम से जॉर्डन जा रहे थे। जॉर्डन मेरी भी यात्रा-सूची में था। इस तरह हम साथ हो गये। लेकिन कार्यक्रम यह बना था कि डॉ. शर्मा अपना काम खत्म करके दो-दिन बाद मुझे ज्वॉइन करेंगे। तब तक मैं अकेला अम्मान का मज़ा लेता रहूँगा।

सुबह-सवेरे बाज़ार बन्द थे और मैं सड़क पर था। होटल से नीचे उतरा तो मुख्य सड़क पर आ गया। बिना मक़सद एक तरफ़ चलना शुरू कर दिया, सभी दुकानें बन्द थीं, लेकिन चाय-कॉफ़ी की दुकानें खुली थीं। एक चाय की दुकान में चला गया। वहाँ दो लड़के बैठे थे। अब सवाल पैदा हुआ कि किस ज़ुबान में बात की जाये? हिन्दी-अंग्रेज़ी वे क्यों जानते। अरबी मुझे नहीं आती। "काफ़ी" कहकर खामोश हो गया। वे समझ गये कि

मैं विदेशी हूँ। अब टूटी-फूटी अंग्रेज़ी और अरबी के कुछ शब्दों के माध्यम से संवाद आगे बढ़ने लगा। पता चला उनमें से एक लड़का सीरिया के गृहयुद्ध के कारण यहाँ आ गया है। दूसरा स्थानीय है। सीरिया पर बात होने लगी कि शिआ-सुन्नी आपस में लड़ते हैं। उनके पीछे क्षेत्र के दो बड़े देश हैं, और जनता मरती-खपती है, जिसे क्षेत्रीय राजनीति से कोई सरोकार है नहीं। दोनों लड़के एक के बाद एक सिगरेट सुलगा रहे थे। मैंने सिगरेट का पैकेट उठाया उस पर अरबी में लिखी इबारत के कुछ शब्द मैंने पढ़ लिये। लड़के हैरान हुए कि मैं अरबी पढ़ सकता हूँ।

बाहर सड़क पर एक ट्रक खड़ा था। पहिया बदला जा रहा था। उसके बराबर एक लम्बा तड़ंगा ट्रैफिक पुलिसमैन चमचमाती हुई मोटरसाइकिल के पास काला चश्मा लगाये और काला ब्लैक कैट जैसा सूट पहने गर्व से अकड़ा खड़ा था। उसे देखकर जॉर्डन की राजशाही की ताकत का अनुमान लगाया जा सकता था। यह भी लगा कि कानून व्यवस्था सख़्त है। राजशाही की पकड़ मज़बूत है।

और आगे बढ़ा तो फुटपाथ पर एक गरीब बुढ़िया दो बिल्लियों को दूध पिला रही थी। जॉर्डन में गरीबी है। ग्रामीण क्षेत्रों में तो विशेष रूप से बेरोज़गारी और गरीबी है जिसे हमने गाँवों में जाकर देखा था। आम तौर पर लोग राज व्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं हैं, क्योंकि देश में भारी असमानता है। लेकिन राज विरोध का स्वर बहुत दबा हुआ है। हो सकता है, इसका कारण राजशाही का आतंक या धर्म की अफ़ीम हो।

होटल में नाश्ता करने के बाद फिर सड़क पर आ गया। मेरे खयाल से किसी देश को देखने और समाज को समझने का सड़कों पर घूमने से अच्छा और कोई दूसरा रास्ता नहीं है। सड़क किताब होती है। बाज़ार खुल गया था। मैं दुकानों और लोगों को देखता आगे बढ़ने लगा। खयाल यह था कि मुहाजिरों के बस अड्डे जाकर कोई ऐसी बस पकड़ूँगा जो एक-दो घंटे में किसी दूसरे कस्बे या शहर ले जायेगी। वहाँ घूमूँगा और शाम तक वापसी हो जायेगी। बाज़ार का रंग बदल गया था। दुकानों के अलावा फुटपाथ पर सामान फैला पड़ा था। फुटपथिया दुकानें बता रही थीं कि उनके ग्राहक भी बड़ी संख्या में हैं। फुटपाथ पर लगी दुकानें देखते-देखते अचानक मैंने फुटपाथ पर बच्चों के पुराने खिलौनों की दुकान देखी और डर गया। एक अजीब तरह का डर लगने लगा। मैं उस दुकान के सामने ठहर गया। लोग, मतलब गरीब लोग अपने बच्चों के लिये दूसरे बच्चों द्वारा खेले गये पुराने खिलौने खरीद रहे थे। मैंने यह भी देखा कि पुराने खिलौने खरीदने वालों के साथ बच्चे नहीं हैं। पुराने खिलौने देखकर बच्चे माँ-बाप से क्या यह न पूछते होंगे कि खिलौने पुराने क्यों हैं? ये भी पूछते होंगे कि उन्हें किन बच्चों ने खेल कर पुराना या गन्दा कर दिया है। बच्चों के मन में यह भी आता होगा कि वे बच्चे कैसे होंगे जो नये खिलौनों से खेलते होंगे। माँ-बाप के लिये बच्चों को यह समझाना मुश्किल हो जाता होगा। बच्चे यह तो न समझ पाते होंगे कि साफ़-सुथरे, चमकदार, नये खिलौनों से खेलने वाले बच्चे वैसे क्यों हैं और पुराने खिलौनों से खेलने वाले ऐसे क्यों हैं? मैंने सोचा कि मैं अगर अपने बच्चे के लिये ‘सेकेण्ड हैंड’ या ‘यूज़्ड’ खिलौने खरीदने पर मजबूर होता तो मुझे कैसा लगता?

जिस बस अड्डे की तलाश थी, वहाँ तो नहीं पहुँच पाया, लेकिन एक ऐसी जगह आ

गया जहाँ से मिनी बसें कहीं या कई तरफ़ जा रही थीं। पूछने पर पता चला कि मैं मिनी बस में बैठकर वादिए-मूसा नामक कस्बे तक जा सकता हूँ और शाम तक वापस आ सकता हूँ। शहर से निकलने का अच्छा तरीका था। जल्दी ही शहर की चमक-दमक से दूर उजाड़ पहाड़ों और सूखे इलाकों से गुज़रती मिनी बस कस्बे में आ गयी। देखकर अच्छा लगा कि यही यथार्थ है, सच्चाई है, देश यही है, यही असली लोग हैं। उतर कर कस्बे के बाज़ार में घूमने लगा। सफ़ाई-व्यवस्था अच्छी लगी। बहुत अधिक भीड़-भाड़ भी नज़र न आयी। हाँ, थोड़ी पस्ती ज़रूर दिखाई पड़ी। एक गली में चाय-कॉफ़ी की दुकान नज़र आयी वहाँ दो लड़के बैठे थे। मैं वहीं बैठ गया। उम्मीद थी कि वे शायद अंग्रेज़ी जानते होंगे पर अनुमान ग़लत निकला। कॉफ़ी पीकर फिर टहलने लगा। मिठाई की एक दुकान दिखाई पड़ी और कुछ अपने यहाँ जैसी मिठाइयों की शक्लें थीं। बड़ी-बड़ी रंग-बिरंगी जलेबियाँ और कुछ रसगुल्ले जैसा दिखाई पड़ा। सोचा, 'ट्राई किया जाये।' मिठाई खानी नहीं चखनी थी। यह बात दुकानदार को समझाने में वक्त लगा। मिठाई खायी तो कुछ खास नहीं लगी। आगे बढ़ा। घूमते-घूमते दोपहर हो गयी थी और खाने का मसला सामने था। दो-तीन खाने के होटलों में से एक चुना और खाने बैठ गया। बड़ी-सी रोटी, कबाब और दही के रायते का 'कॉम्बिनेशन' मज़ेदार था। खाकर पैसे पूछे, उसने तीस रियाल बताये। मैंने ग़लती से उसे तीन सौ दे दिये। उसने फ़ौरन मेरी ग़लती की तरफ़ इशारा किया और आसमान की तरफ़ उँगली उठाकर कुछ कहा जिसका मतलब साफ़ था।

होटल के नीचे वाली मुख्य सड़क पर प्राचीन रोमन थिएटर के विशाल खंडहर हैं। इस प्रांगण में शाम के वक्त सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं। पहले दिन ही शाम को घूमता-घामता यहाँ पहुँचा और अरब नर्तकों का नृत्य देखा। परम्परागत वेशभूषा में दस-पन्द्रह आदमी नाच रहे थे। उनका नाच कुछ मार्शल आर्ट जैसा था। कुछ ऐसा नृत्य था जो युद्ध के बाद या पहले किया जाता रहा होगा। यह अजीब लगा कि दो-तीन नृत्य जो वहाँ देखे उनमें सभी आदमी थे कोई महिला न थी, जबकि अरब की महिला नर्तकियाँ बहुत विख्यात रही हैं। हो सकता है, वर्तमान समय की कट्टरवादिता ने महिलाओं को नृत्य के हाशिए पर डाल दिया हो।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस पूरे क्षेत्र—पश्चिम एशिया में जो राजनीतिक उथल-पुथल रही और इस कारण जॉर्डन में आस-पास के देशों से जो शरणार्थी आये, उसका प्रभाव जगह-जगह देखा जा सकता है। कहीं-कहीं बहुत आधुनिक कपड़े पहने और पाश्चात्य ढंग से सजी-धजी लड़कियाँ, औरतें दिखाई देती हैं तो कहीं भयानक रूप से काले बुर्के में लिपटी औरतें नज़र आती हैं, जिनके शरीर तो बड़ी बात, आँखों तक की झलक नहीं मिलती। मुझे लगा जॉर्डन या कहना चाहिए कट्टर मुस्लिम धार्मिक समाज में पुरुषों ने अपने लिये कोई धर्म सम्मत पहनावे के नियम नहीं बनाये हैं। ऐसा नहीं है कि हर आदमी दाढ़ी रखे और पुराने ढंग के अरबी कपड़ों में दिखाई देता हो लेकिन औरतों के लिये उन्होंने ज़रूर कट्टरपंथी पर्दा नियम बनाये हैं। आदमी तो सूट से लेकर शॉर्ट्स तक में नज़र आते हैं, लेकिन उनके साथ महिलाएँ बिलकुल मध्यकालीन बुर्कों में ही दिखती हैं। रोमन थिएटर के प्रांगण में मैंने ऊपर से नीचे तक काले बुर्कों में ढँकी सात-आठ महिलाओं को एक साथ बैठे देखकर उनका फ़ोटो ले लिया। मुझे लगा और दूसरे लोग भी कहते हैं कि मुस्लिम समाज ने महिलाओं के पर्दे के प्रति कुछ ज़्यादा ही कड़ा रवैया

अपनाया हुआ है। यह प्रायः अरब देशों में देखा जा सकता है। जॉर्डन में 'डेड सी' के अलावा कुछ ऐसे विशेष झरने हैं जिनके पानी में नहाना मज़ेदार और लाभप्रद माना जाता है। इन झरनों में औरतें बुर्का पहने-पहने नहाती हैं। यह देखकर उनके प्रति दया और सहानुभुति जगती है। पश्चिमी औरतों की तरह स्वीमिंग कास्टयूम न भी पहनें तो कम-से-कम झरने में नहाने से पहले बुर्का तो उतारा ही जा सकता है। तेहरान की रंगशाला में नाटक की रिहर्सल करते समय लड़कियों को पूरे 'हिजाब' में देखकर भी अजीब लगा था। बताया गया था कि नाटक में चाहे लड़की 'बैले डांसर' का रोल कर रही हो, चाहे आदिवासी कन्या की भूमिका निभा रही, हो उसे मंच पर पूरे हिजाब में ही आना पड़ेगा। पर्दे को यदि हम निजी पसन्द और आज़ादी का विषय भी मान लें तो यह सवाल पैदा होता है कि निजी आज़ादी और पसन्द में ये बन्धन नहीं होते। वैसे भी इस्लाम धर्म के विद्वान कहते हैं कि धर्मग्रन्थ में महिलाओं के लिये अश्लील और उत्तेजक ढंग से अंग प्रदर्शन को ग़लत बताया गया है। उस पर रोक लगाई गयी है। बुर्के या हिजाब की कोई एक विधि या तरीक़ा नहीं बताया गया। हिजाब और बुर्के के तरीक़े बाद में बनाये गये हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। और शायद यही वजह है कि संसार के विभिन्न मुस्लिम देशों की महिलाओं के हिजाब और बुर्के के अलग-अलग रूप और तरीके प्रचलित हैं।

डेड सी

प्रोग्राम के अनुसार अगले दिन डॉ. शर्मा गाड़ी और ड्राइवर लेकर आ गये। हम लोग ‘डेड सी’ मतलब ‘मुर्दा समुद्र’ की तरफ़ रवाना हो गये। अरबी में ‘डेड सी’ को ‘अल-बहरुल मय्यत’ कहा जाता है यानी मौत का समुद्र। यह भी अपने आप में एक अनूठी जगह है। मतलब संसार में इस समुद्र जैसे नमकीन पानी के स्रोत कम हैं। समुद्र से लगभग दस गुना अधिक नमकीन डेड सी में नमक 34.2% है। यह नमक किसी भी जीव को मुर्दा बना देता है। मतलब ‘डेड सी’ में जीव नहीं रह सकता। पचास किलोमीटर लम्बा और अधिकतम 15 किलोमीटर चौड़ा यह समुद्र वास्तविक समुद्र सतह से 1,400 फ़ीट नीचे है। इसकी गहराई लगभग 1000 फ़ीट है। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण ‘डेड सी’ से कई तरह के रसायन भी मिलते हैं। प्राचीनकाल से ही यह अपने इन गुणों के लिये जाना जाता है। कहा जाता है इस्लाम, ईसाई और यहूदी धर्मों के पैगम्बर दाऊद भी यहाँ स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने आये थे।

एक तरफ़ मिट्टी के ऊँचे टीलों जैसे पहाड़ थे जिन पर हरियाली का एक तिनका भी नहीं दिखाई पड़ रहा था, दूसरी तरफ़ नीला समुद्र था जो बड़ी झील जैसा लग रहा था क्योंकि उसका दूसरा किनारा भी दिखाई पड़ रहा था। हम लोगों ने दूर से इज़राइल और फिलिस्तीन के दर्शन भी कर लिये। ‘डेड सी’ इन तीन देशों के बीच स्थित है। ड्राइवर भारतीय था। लेकिन अरबी अच्छी तरह जानता था और इलाके से परिचित था। वह हमें ‘डेड सी’ के ऐसे बीच पर ले जाना चाहता था, जहाँ भीड़भाड़ न हो। कुछ देर बाद हम पानी में थे और इस सच्चाई का निजी अनुभव प्राप्त कर रहे थे कि ‘डेड सी’ में कोई डूबता नहीं। ‘डेड सी’ के अन्दर शर्मा जी का प्रदर्शन शानदार था, क्योंकि वे तैरना जानते हैं और उन्होंने बिना हाथ-पैर चलाये पानी पर उतरकर दिखाया कि ‘डेड सी’ वास्तव में ‘डेड’ है। ‘डेड’ से किसी को कोई ख़तरा नहीं है।

सूरज डूबने से कुछ घंटे पहले हम लोग पत्थर के एक अन्य गेट के सामने खड़े थे। प्राचीन रोमन साम्राज्य के सीरिया प्रांत के एक नगर जैराश के सामने, हम हैरान थे। भव्यता और कलात्मकता चमत्कृत कर देती है। कुछ क्षण के लिये हम अभिभूत हो गये। 13 मीटर ऊँचा, मज़बूत और भव्य दरवाज़ा अनगिनत कहानियाँ सुना रहा था। वैभव की, महानता की, शक्ति और शासन की, समृद्धि और धनाढ्यता की, अधिकार और व्यवस्था की, सम्राट और सेना की और उसी के साथ समय के निर्मम हाथों द्वारा विनाश की अन्तिम गाथा।

चूँकि शाम हो चुकी थी, सूरज ढल चुका था इसलिए जैराश के कुछ हिस्से बन्द कर दिये गये थे। हम लोग वही हिस्से देख सके जो मुख्य गेट के आस-पास थे। लेकिन यह अनुमान लगाना कठिन न था कि जैराश अपने समय में एक बहुत बड़ा शहर रहा होगा।

दूर-दूर तक खंडहर दिखाई पड़ रहे थे।

जैराश देखकर लगता है कि रोमन बड़ी शानो-शौकत से ही नहीं बड़े 'स्टाइल' से भी रहा करते थे। उनके जीवन में सुन्दरता का बड़ा महत्त्व था। वे सुरुचिपूर्ण थे और जीवन की उसकी महिमा के साथ जीना जानते थे। उनमें कला की अपार समझ थी और आकारों के संयोजन से उनका गहरा परिचय था। जैराश से पता चलता है कि रोमन सामाजिक जीवन को कितना महत्त्व देते रहे होंगे।

जैराश का इतिहास रोमन साम्राज्य से भी पुराना है पर वास्तव में इसे रोमन साम्राज्य में ही यह स्वरूप और ख्याति प्राप्त हुई थी। सिकंदर महान (333 ई. पू.) के समय यह एक बड़ा शहर था। सन् 106 रोमन सम्राट ताराजन के शासनकाल में इसका और अधिक विकास हुआ था। तीसरी शताब्दी ईसवीं में यहाँ पन्द्रह से बीस हज़ार लोग रहा करते थे। कई किलोमीटर में फैले इन खंडहरों में हैडरियन का गेट है जो इस बात का बड़ा ठोस प्रमाण है कि यह शहर कभी रोमन साम्राज्य के वैभव का एक उदाहरण रहा होगा। यहाँ एक विशाल थिएटर के खंडहर देखे जा सकते हैं जो पहली शताब्दी में एक पहाड़ को काट कर बनाया गया था। यहाँ पाँच हज़ार दर्शक बैठ सकते थे। अन्य भव्य मन्दिरों और समाधि स्थलों के अलावा जैराश की एक सबसे सुन्दर इमारत 'ओवल शेप प्लाज़ा' है। अर्ध अंडाकार प्लाज़ा तक मुख्य द्वार से सीधी सड़क आती है। प्लाज़ा में तीन तरफ़ गोल खंभों को ऊपर से एक पतली पट्टी जोड़ती है। सामने 90 मीटर लम्बा, 80 मीटर चौड़ाई वाला ओवल शेप मैदान है जिसमें पत्थर जड़े हुए हैं। प्लाज़ा की भव्यता चकित कर देती है और बनाने वालों की सौन्दर्यप्रियता का लोहा मानना पड़ता है। यदि आज सैकड़ों-हज़ारों साल बाद यह इतना प्रभावशाली है तो वास्तव में जब बना होगा या प्रयोग किया जाता रहा होगा तो कैसा होगा। प्लाज़ा नगरवासियों के मिलने-जुलने की जगह हुआ करता था। यह एक तरह से शहर के केन्द्र में था। धर्म स्थलों और बाज़ार आने-जाने वालों के लिये मिलने-जुलने का आदर्श स्थान रहा होगा। कुछ दूसरी महत्त्वपूर्ण इमारतों के अलावा यहाँ का संग्रहालय भी दर्शनीय है।

साम्राज्य के टुकड़े

आगे बढ़ते-बढ़ते रुक कर दो कदम पीछे जाने की ज़रूरत है। ताकि जॉर्डन जैसे देश को समझा जा सके जो बहुत पुराना होते हुए भी बहुत नया है। जॉर्डन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही अस्तित्व में आया है। नये और पुराने के विरोधाभास को समझने के लिये इतिहास में जाने की आवश्यकता पड़ती है। 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों तक यह इलाक़ा तुर्की साम्राज्य, जिसका प्रमुख खलीफ़ा हुआ करता था, के अधीन था। खलीफ़ा का साम्राज्य एक समय इतना शक्तिशाली था कि उसने योरोप की बड़ी-से-बड़ी ताक़त को पराजित किया था। शताब्दियों तक चलने वाले ईसाई-मुस्लिम धर्म युद्धों में महत्त्वपूर्ण कारनामे अंजाम दिये थे। 1529 ई. में खलीफ़ा की सेनाओं ने होली रोमन एम्पायर के प्रमुख नगर वियेना को घेर लिया था और पूरे क्रिश्चियन योरोप पर गम्भीर खतरा मँडराने लगा था। ईसाई योरोप ने एकजुट होकर खलीफ़ा की सेनाओं का मुँह मोड़ा था।

खलीफ़ा का साम्राज्य पूर्वी योरोप के कुछ देशों के अतिरिक्त पूरे अरब उपमहाद्वीप में भी था। सोलहवीं शताब्दी में इतना शक्तिशाली साम्राज्य बीसवीं शताब्दी में टुकड़े-टुकड़े हो गया था। उसे टुकड़े-टुकड़े करने में अन्य कारणों के अलावा योरोप की सक्रिय भूमिका थी।

विस्तार में जाने से पहले यह चर्चा कर लेना अनावश्यक न होगा कि सोलहवीं शताब्दी में योरोप से टक्कर लेने वाले खलीफ़ा साम्राज्य का 19वीं शताब्दी में इतना पतन कैसे हो गया कि वह टुकड़े-टुकड़े हो गया। दूसरी ओर योरोप की ताक़त इतनी बढ़ गयी कि उसने पूरी दुनिया में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया।

तुर्क़ी के खलीफ़ा साम्राज्य के पतन के कई कारण माने जाते हैं। इतिहासकार कहते हैं कि समुद्री रास्तों से विश्व व्यापार के क्षेत्र में अरब और दूसरी एशियाई शक्तियों को परास्त करने के बाद योरोप ने 18वीं शताब्दी में अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया था। इसके नतीजे में योरोप में अकूत धन आ गया था और औद्योगिक क्षेत्र में एक क्रान्ति हो गयी थी। यह योरोप की औद्योगिक क्रान्ति कहलाती है। इस क्रान्ति के परिणामस्वरूप विज्ञान और तकनीक का विस्तार हुआ था, जिससे अन्ततः सैन्य शक्ति अत्यधिक मज़बूत हो गयी थी। इस परिवेश में, योरोप के समाज में चर्च और सम्राट रूपी दो शक्तियाँ थीं। इन दो शक्तियों के द्वंद्व और कहीं-कहीं प्रतिस्पर्द्धा के कारण मध्यमवर्ग का तेज़ी से विकास हुआ था, जबकि तुर्की या अन्य पूर्वी साम्राज्यों में धार्मिक और राजनैतिक शक्ति प्रायः सम्राट के हाथ में केन्द्रित थी। तुर्की में तो ऐसा निश्चित रूप से था। खलीफ़ा सम्राट भी था और सर्वोत्तम धर्मगुरु भी था। इसलिए सामाजिक द्वंद्व के लिये बहुत 'स्पेस' न था। इस कारण समाज में ठहराव आ गया था। सामंतवादी शोषण बढ़ गया था। नये विचारों का अभाव था। नयी शिक्षा और जागरूकता नहीं थी।

प्रथम विश्व युद्ध (1914-1919) में तुर्की जिस गुट के साथ था, वह पराजित हो गया था। इस तरह तुर्की न केवल कमज़ोर हो गया था, अपितु उसे इंग्लैंड और फ्रांस के आदेश स्वीकार करने पड़े थे। इन देशों की साम्राज्यवादी सरकारों ने तुर्की और अरब क्षेत्र में भूतपूर्व अरब सामंतों के माध्यम से इंग्लैंड ने एक सफल विद्रोह कराया था। इसी सन्दर्भ में 'लॉरेन्स ऑफ़ अरेबिया' का उल्लेख किया जाता है जिनके मार्गदर्शन और नेतृत्व में अरब सरकार तुर्की सेना से लड़ी थी और विजय प्राप्त की थी। इस संघर्ष को अरब क्रान्ति कहा जाता है।

अरब क्षेत्र को तुर्की से मुक्त करने के संघर्ष के दौरान इंग्लैंड ने अरबी सामंतों, सबसे बड़े भूतपूर्व अरब सम्राट शरीफ हुसैन बिन अली को यह आश्वासन दिया था कि पूरा अरब क्षेत्र एक देश होगा, जिसके वे सम्राट होंगे। लेकिन लड़ाई जीत जाने के बाद साम्राज्यवादी ताक़तों ने अरबों से गद्दारी की और जैसा वायदा किया था वैसा नहीं किया। साम्राज्यवादी ताक़तों ने अपने हितों की रक्षा और अरब एक शक्तिशाली देश न बन पाये इस उद्देश्य से पूरे अरब क्षेत्र को टुकड़ों में बाँटकर छोटे-बड़े देश बना दिये। जॉर्डन भी साम्राज्यवादियों का बनाया एक छोटा-सा देश है, जिसे सीरिया से अलग करके बनाया गया है।

पुराने क़स्बे में

इमारतें और खंडहर देखना बहुत ज़रूरी और दिलचस्प हैं, लेकिन जीवन देखना कम बड़ा काम नहीं है। यही सोचकर हम लोग जॉर्डन के एक 'ट्रेडीशनल' और पुराने कस्बे साल्ट आये थे। आते ही लग गया था कि सही जगह आ गये हैं। यहाँ की ज़िन्दगी अम्मान के मुक़ाबले बहुत सरल-सीधी और मंद गति से चलती नज़र आयी। टहलते हुए हम कस्बे के कॉफ़ी हाउस पहुँच गये। कॉफ़ी हाउस अच्छा खासा बड़ा था। पुराना भी लग रहा था। चूँकि दिन के करीब ग्यारह बजे थे इसलिए ज़्यादातर मेज़ें खाली थीं। काउंटर के पास वाली मेज़ पर हमें एक स्थानीय व्यक्ति बैठे दिखाई दिये जो मस्तमौला किस्म के, कलाकार जैसे, कॉफ़ी हाउस के पक्के रसिया से लग रहे थे। उन्होंने हमें आकर्षित किया और हम सीधे उनकी मेज़ पर पहुँच गये। ये सज्जन अंग्रेज़ी जानते थे। बातें होने लगीं। डॉ. शर्मा अनजान लोगों से बहुत जल्दी दोस्ती कर लेने की कला में निपुण हैं। पहले उन्हीं से इन सज्जन की बातें होने लगीं। जॉर्डन के कस्बे का जीवन हमारे सामने खुलने लगा। सामाजिक समस्याएँ, बेरोज़गारी, पड़ोसी देशों में युद्ध की स्थिति से खंडित जीवन, प्रशासनिक स्तर पर गतिहीनता आदि बातें सामने आयीं।

साल्ट में एक बाज़ार है जो कस्बे का प्राचीनतम बाज़ार माना जाता है। इस बाज़ार में हम्माम भी हैं और मस्जिद भी है। पहली गलियों के दोनों तरफ़ सामान और खाने-पीने की चीज़ों से भरी दुकानें देखते और तस्वीरें लेते हम आगे बढ़ते रहे। हम लोगों को और लोग हमें देखते रहे। पतली गली के अन्तिम छोर पर अरब के कुछ लोग बैठे गपशप कर रहे थे। उन्होंने हमें देखा तो रुचि दिखाई। हम लोगों के बीच अंग्रेज़ी के एक-दो शब्दों के माध्यम से बातचीत होने लगी। एक सज्जन ने मुझे तसबीह (माला) भेंट दी। ग्रुप फ़ोटो खींची जाने लगी।

सब अपने मोबाइल से तस्वीरें उतारने लगे। इन लोगों ने हमें चाय-कॉफ़ी भी 'ऑफ़र' की जो हमने शुक्रिया अदा करके मना कर दी और आगे आये। मस्जिद के सामने एक पेड़ के नीचे बने सुन्दर, सफ़ेद चबूतरे पर पड़ी बेंचों पर बूढ़े अरब अपने परम्परावादी कपड़ों में बैठे कुछ शतरंज या चौसर जैसा खेल खेल रहे थे। चारों तरफ़ देखा तो बहुत सफ़ाई और व्यवस्था नज़र आयी। आम तौर पर अपने महान देश में इस तरह के इलाके काफ़ी गन्दे होते हैं। अरबों ने हमारी तरफ़ उचटती निगाहों से देखा। हमने तस्वीरें लीं और आगे बढ़ गये। बस अड्डे की तरफ़ वापसी में हमें एक कल्चरल सेंटर दिखाई पड़ा। यह एक नयी बनी खूबसूरत इमारत थी। यहाँ फ़ोटो गैलरी, आर्ट गैलरी, लायब्रेरी, रंग वीथिका आदि सुविधाएँ उपलब्ध थीं। यह सेन्टर देखकर मैं चौंक गया और सोचने लगा, साल्ट जैसे छोटे कस्बे में जहाँ एक लाख लोग ही रहते हैं, यह सांस्कृतिक केन्द्र मौजूद है, जबकि अपने महान देश में करोड़ों की आबादी वाले शहर भी सांस्कृतिक

केन्द्रों से वंचित हैं।

अद्भुत सम्भावना

'अब जिगर थाम के बैठो, मेरी बारी आयी' वाले अन्दाज़ में अब पेत्रा की बात शुरू होती है। प्रकृति तो हैरान करती ही रही लेकिन कहीं-कहीं मनुष्य भी हैरान कर देते हैं। लगता है अगर यह काम आदमी का है तो आदमी को कोई और नाम देना पड़ेगा। आदमी के दर्जे को और ऊँचाई पर स्थापित करना होगा।

आश्चर्यचकित कर देने वाली मानव संस्कृति की महान उपलब्धि पेत्रा की चर्चा करने से पहले अरब इलाके में ईसा से 1900-600 वर्ष पूर्व बसने वाले व्यापारिक कबीले नबालियन या अरबी भाषा में अल नबात की चर्चा करना ज़रूरी है। ये लोग पूरे अरब क्षेत्र में व्यापार किया करते थे। वर्तमान यमन, सऊदी अरब, ओमान, सीरिया, इराक और तुर्की में इनका कारोबार फैला हुआ था। ये एक तरफ़ सिल्क रोड से आने-जाने वाले व्यापारियों से सौदा करते थे तो दूसरी ओर समुद्री रास्ते से भारत और अन्य बन्दरगाहों से सामान लाने-ले जाने वालों से इनका लेन-देन चलता था। अपने कारोबार को समुचित ढंग से चलाने के लिये इन लोगों ने कई क्षेत्रों और देशों में अपनी कोठियाँ और इमारतें बनवायी थीं। जिनमें से प्रमुख 'सालेह' सीरिया में थीं। ये प्रायः केन्द्रीय अरबी रेगिस्तान, पूर्वी अरबी रेगिस्तान के क्षेत्रों में ऊँटों पर सामान लाद कर कारवाँ के रूप में यात्रा करते थे। ईसा से लगभग 600 वर्ष पूर्व नबातियों ने स्वयं समुद्री यात्राएँ शुरू कर दी थीं पर उनका प्रमुख उद्देश्य व्यापार करना नहीं—दूसरे व्यापारिक जहाज़ों को लूटना हुआ करता था। नबातियों के पास जल्दी ही आर्थिक शक्ति के साथ-साथ राजनैतिक शक्ति भी आती चली गयी और कुछ सौ साल बाद अरब क्षेत्र में उनका बड़ा साम्राज्य स्थापित हो गया था। रोमन साम्राज्य के प्रभाव और शक्ति के बढ़ते (106 ई. पू.) नबातियों की ताक़त घटने लगी थी और अन्ततः उन पर रोमन साम्राज्य का अधिकार हो गया था।

नबातियों ने अपने उत्थान काल में एक विश्व स्तर की राजधानी बनाने का निर्णय किया था। एक ऐसी राजधानी बनाने का विचार आया था, जो सुरक्षित हो, व्यापारिक रास्ते में हो, अत्यन्त सुन्दर और सुदृढ़ हो। इसके अन्तर्गत ईसा से लगभग 200 वर्ष पूर्व नबातियों ने पेत्रा की कल्पना को साकार करना शुरू किया था।

पेत्रा जाने के लिये जॉर्डन की राजधानी से बसें आदि मिलती हैं जो पाँच-छः घंटे में वादिए-मूसा पहुँचा देती हैं। यह एक कस्बा है जो पेत्रा के नज़दीक है। हम लोग दोपहर होते-होते वादिए-मूसा पहुँच गये थे। होटल के कमरों में भरपूर थकान दूर करने के बाद हमने कस्बे की खाक छाननी शुरू की। नानबाइयों यानी रोटी, बिस्कुट वगैरह बनाने वालों की दुकानों से रोटी खरीद कर खायी, मिठाईवालों की मिठाई चखी, रेस्टोरेंट में कबाब खाये और इस दौरान कस्बे का मुख्य बाज़ार देख डाला। हमें यह देखकर आश्चर्य हो रहा था कि दुकानदार रात में दुकानें बन्द करते समय दुकानों के बाहर बरामदे में रखे सामान

को वहीं छोड़ देते हैं। मतलब चोरी-चकारी का कोई डर नहीं है। मज़ेदार बात यह है कि जॉर्डन में चोरी नहीं लेकिन 'चीटिंग' खूब चलती है। टैक्सीवालों का हाल मैं बता चुका हूँ। दूसरा उदाहरण—वादिए-मूसा में एक रात हम खाना खाने गये। हफ़्ते दस दिन में हमें अच्छा-खासा अन्दाज़ा हो गया था कि किस तरह के रेस्तराँ में खाने का क्या दाम होता है। यह एक औसत दर्जे का रेस्तराँ था। हमने सीधे-सादे खाने का ऑर्डर दिया। लेकिन जब पैसे बताये गये तो वे बहुत ज़्यादा थे। हमारे विरोध करने पर रेस्तराँ के मालिक ने हमें 'मेन्यू कार्ड' दिखा दिया, जिस पर वही पैसे दर्ज थे जो हमसे माँगे जा रहे थे। बाद में पता चला स्थानीय लोगों के लिये मेन्यू वाले रेट नहीं होते लेकिन विदेशियों से मेन्यू वाले रेट लिये जाते हैं। यही नहीं; ठगी के कुछ दूसरे नमूने भी हमारे सामने आये।

पेत्रा के सामने

अगले दिन सुबह सुबह ही हम पेत्रा के लिये चल पड़े। टैक्सी ने कोई पाँच मिनट में ही पेत्रा के स्वागत स्थल पर पहुँचा दिया। हमने तीन दिन वाला टिकट लिया, मतलब यह कि विशाल गुप्त शहर इतना बड़ा है कि उसे देखने में प्रायः तीन दिन लग जाते हैं। रिसेप्शन से बाहर निकल कर पेत्रा की तरफ़ बढ़े तो हमें शहर या शहर का चिन्ह कहीं नहीं दिखाई पड़ा। सामने सूखे और नंगे पहाड़ों का एक सिलसिला था, जो दूर तक फैला था। एक रास्ता उन पहाड़ों की तरफ़ जा रहा था। उधर जाने वाले कुछ लोग खच्चरों या गधों या खच्चर गाड़ियों पर भी जा रहे थे। कोई पैंतालीस मिनट चलने के बाद हम पहाड़ों के करीब पहुँचे। दिखाई यह पड़ा कि एक पहाड़ी नदी या नाले के ऊपर बने पुल के आगे रास्ता पहाड़ों के अन्दर चला जाता है। एक रहस्य और रोमांच को समेटे हम आगे बढ़ते रहे। करीब छः-सात सौ फुट ऊँचे पहाड़ों के बीच से एक सुरंगनुमा रास्ता यहाँ की तरफ़ जाता दिखाई पड़ा। रास्ते पर चलते ही यह लगा कि यह बनाया हुआ नहीं है, प्राकृतिक है। दोनों तरफ़ सीधे ऊँचे पहाड़ दीवारों की तरह खड़े थे। उन पहाड़ों के रंग और रूप ने एक विशेष छटा बिखेर रखी थी। जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये, वैसे-वैसे रास्ता बहुत कलात्मक और रहस्यमय होता चला गया। कहीं ऊपर का आकाश तक पहाड़ों में छिप जाता था और कहीं रास्ता पतला, इतना पतला हो जाता था कि चौड़ाई मात्र 12-13 फ़ीट ही बचती थी। कभी इधर-उधर के पहाड़ों की दीवारों पर सूरज की रौशनी बड़े रोचक और कलात्मक चित्र बना देती थी। रास्ता चलने नहीं देखने से ताल्लुक रखता था। हम दोनों अपने-अपने कैमरों पर जुटे हुए थे। लगता था लगातार क्लिक करते जायें, तब भी इस सुन्दरता को समेट पाना मुश्किल है।

इस रहस्यमयी प्राकृतिक रास्ते के साथ-साथ एक तरफ़ पहाड़ की दीवार के साथ एक नाली-सी दिखाई पड़ी। यह समझते देर नहीं लगती कि यह नाली शहर के अन्दर पानी पहुँचाने के काम आती होगी। नबाती पानी को सतह से ऊपर उठाने की तकनीक जानते थे। नदियों में ‘डैम’ जैसा बनाकर पानी का संरक्षण और उसे दूर तक लाने-ले जाने की कला भी उन्हें खूब आती थी।

पतला रास्ता काफ़ी लम्बा था। मतलब हम एक घंटे या उससे कुछ ज़्यादा समय तक चलते रहे। कभी-कभी ऊपर पहाड़ इस तरह छा जाते थे कि आकाश दिखाई नहीं पड़ता था। कहीं तीखे मोड़ आते थे। यह रास्ता तरह-तरह की कल्पनाओं के द्वार खोल रहा था। वैसे यह तो सोचना ही पड़ रहा था कि यह रास्ता प्रकृति ने कब, कैसे और क्यों बनाया होगा? नबातियों ने इस रास्ते को इसलिए अपनाया कि अजनबी या दुश्मन शहर तक आसानी से न पहुँच सकें। इस रास्ते को यदि बन्द कर दिया जाये तो दुश्मन का आगे बढ़ना लगभग असम्भव हो जायेगा। दूसरे यह कि इस पतले रास्ते के कारण बड़ी सेना

अचानक शहर तक नहीं पहुँच सकेगी। एक वजह यह भी हो सकती है कि नबाती बहुत धनवान थे और धन की सुरक्षा उनके लिये एक बड़ा मुद्दा था।

एक घंटे बाद अचानक सामने एक ऐसी इमारत दिखाई पड़ी कि हम अवाक् रह गये! अद्वितीय सुन्दरता होश उड़ा देती है। अति सुन्दर स्त्रियों को देखकर बेहोश हो जाने के प्रसंग हमारे साहित्य में भरे पड़े हैं। पेत्रा की पहली इमारत जिसे 'ख़ज़ाना' कहते हैं, किसी सुन्दर-से-सुन्दर स्त्री जैसी सुन्दर है। इस इमारत के नाम, 'ख़ज़ाना' से ही यह साबित होता है कि इस समुदाय के पास कितनी धन-दौलत रही होगी कि सबसे विशाल और सुन्दर भवन के रूप में ख़ज़ाने की इमारत बनाई गयी।

पतले रास्ते से बाहर आते ही एक समुचित दूरी पर ख़ज़ाना की पूरी इमारत इस तरह दिखाई पड़ती है कि उसकी सुन्दरता अत्यधिक प्रभावित करती है। प्राचीनकाल में और मध्यकाल में भी भव्य इमारतें बनाने वाले यह जानते थे कि किस इमारत को कितने फ़ासले से देखा जाना चाहिए। ताजमहल के बनाने वालों को भी यह बात अच्छी तरह मालूम थी, इसलिए ताजमहल के पहले दर्शन जिस जगह से होते हैं, वहाँ से वह सबसे अधिक सुन्दर दिखाई पड़ता है।

ताजमहल या संसार की अन्य भव्य ऐतिहासिक इमारतों और पेत्रा में एक बहुत बड़ा अन्तर है। दूसरी इमारतें पत्थरों को जोड़ कर बनाई गयी हैं, जबकि पेत्रा को पहाड़ काट कर बनाया गया है। जैसे कुम्हार गीली मिट्टी से घड़ा बनाता है, उसी तरह लाइम स्टोन के पहाड़ को तराश कर एक अद्भुत कलाकृति पेश की गयी है। पहाड़ काटने वाले को मालूम रहा होगा कि पहाड़ काटते समय यदि एक भी ग़लती हो गयी तो उसे सुधारा नहीं जा सकता। उसे यह भी मालूम रहा होगा कि खंभे, दीवारें, वग़ैरा बनाने के साथ-साथ उसे बहुत कलात्मक बेल-बूटे, कंगूरे और ऐसे आकार भी बनाने पड़ेंगे जो बहुत 'प्रीसीज़न' (यथार्थता) की माँग करते हैं। उसे अनुपात और आकार का ध्यान रखना होगा, जिसके एक मिली सेंटीमीटर अन्तर होने से कला नष्ट हो जायेगी। बहुत संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ताजमहल बनाने वाले को अपनी ग़लती सुधारने का मौका था, लेकिन 'ख़ज़ाना' बनाने वाले को नहीं था। पहली नज़र में 'ख़ज़ाना' इमारत रोमन स्थापत्य कला से प्रभावित एक शानदार इमारत नज़र आती है, लेकिन यह समझने में समय लगता है कि ऐसा नहीं है। बल्कि रोमन स्थापत्य कला नबातियों की स्थापत्य कला की देन है, क्योंकि यह रोमन स्थापत्य कला से पुरानी है।

'ख़ज़ाना' 43 मीटर ऊँची इमारत है। इसकी चौड़ाई 30 मीटर है। पाँच सीढ़ियों के ऊपर छः गोल खंभे हैं। खंभों के बीच की दूरी में भी कलात्मक अन्तर दिखाई देता है। मुख्य द्वार के सामने वाले खंभों के बीच की दूरी अधिक है। उसके बाद दायें-बायें बने खंभों के बीच का फ़ासला कम है लेकिन दो छोरों पर बने खंभे फिर केन्द्रीय खंभों जैसी दूरी पर स्थित है। खंभों के ऊपर कलात्मक छतरी जैसा 'पैटनी' है, जो पूरी तरह से तिकोना नहीं है। चौड़ाई की तुलना में लम्बाई अधिक है लेकिन इससे एक बड़ी सुन्दरता पैदा होती है। बरामदे के बाद अन्दर जाने का मुख्य द्वार है। 'ख़ज़ाना' इमारत में दूसरी मंज़िल होने का आभास भी दिया गया है। बाहर से देखने पर लगता है कि दूसरी मंज़िल भी है, पर वह नहीं है। केवल खंभों, खिड़कियों, दरवाज़ों का आभास भर दिया गया है,

पर उसका संयोजन इतना कलात्मक और सन्तुलित है कि आश्चर्य होता है। ‘ख़ज़ाना’ की विशेषता केवल मुख्य इमारत नहीं है। मुख्य इमारत को सजाने के लिये विभिन्न मुद्राओं में मानव आकृतियों जैसी आकृतियाँ, गोलाकार और अर्ध गोलाकार आकार, बेल-बूटे, पत्तियाँ अन्य आकृतियाँ इस तरह उकेरी गयी हैं कि इमारत का हिस्सा बन गयी हैं। यह देखकर बनाने वालों की कल्पना शक्ति, परिश्रम, धैर्य और कलात्मक क्षमता का लोहा मानना पड़ता है।

‘ख़ज़ाना’ के बाद हम आगे बढ़े। दूसरी इमारतें भी पहाड़ काट कर बनाई गयी हैं। इनमें अधिकतर मन्दिर और वे स्थान हैं जहाँ नबाती अपनी सभाएँ आदि करते रहे होंगे। मन्दिरों और मकबरों के अलावा रहने और सामान रखने के गोदाम जैसी इमारतें भी हैं। यह स्पष्ट पता चल जाता है कि गरीब या कामगार कहाँ रहते होंगे और धनवान लोगों का कहाँ ठिकाना होगा। कई किलोमीटर में फैले इस नगर में कभी तीस हज़ार लोग रहा करते थे।

हम दोनों उत्साह में घूमते रहे। पूरे क्षेत्र की इमारतें देख डालीं। अनगिनत चित्र खींचे। स्थानीय अरबों जिन्हें बद्दू कहा जाता है, से बातचीत की। हम अतिरिक्त उत्साह में भूल गये कि हमने तीन दिन का टिकट लिया है। हम पूरे पेत्रा को ठहर-ठहर कर भी देख सकते हैं। पहले दिन ग़ैर मामूली, भागदौड़, चढ़ाई, खच्चर की सवारी आदि का नतीजा यह निकला कि हम होटल आकर ऐसे पड़ गये कि न पूछिए।

अगले दिन पैरों की यह हालत थी कि चलने से इनकार कर रहे थे लेकिन हम फिर पेत्रा गये कुछ और देखा, सराहा और उन लोगों के सामने नतमस्तक हुए जिन्होंने यह अद्वितीय काम किया था।

पेत्रा का एक वह भी हिस्सा है जो रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत बना था। यह अलग प्रकार का है और पुराने पेत्रा से काफ़ी अलग लगता है, पर इसकी भी भव्यता और विशालता प्रभावित करती है।

सोशल टूरिज़्म

हमारा कार्यक्रम कुछ ऐसा बन गया था कि वादिए-मूसा में हमें तीन दिन और ठहरना पड़ गया था। यह एक तरह से अच्छा ही हुआ, क्योंकि ये तीन दिन हमारे बड़े काम आये।

हम स्थानीय लोगों से मिले और उनका जीवन देखा। अल अनाबात होटल, जहाँ हम ठहरे थे, के मालिक खालिद से हमारी अच्छी जान-पहचान हुई। वहाँ काम करने वाले एक नौजवान मूसा से भी हमारी अच्छी छनी। वह हमें एक दिन अपने घर भी ले गया और वहाँ अपने बच्चों से मिलाया। उसकी पत्नी हमारे सामने नहीं आयी। बातचीत में मूसा से डॉ. शर्मा ने कहा कि अब दो बेटों के बाद उसके यहाँ एक बेटी हो जानी चाहिए। इस पर मूसा ने बुरा-सा मुँह बनाया और कहा, ‘नहीं तीसरा भी लड़का ही होना चाहिए। क्योंकि उसे लड़कियाँ पसन्द नहीं हैं।’ उसके इस ‘कमेंट’ पर हम चौंक गये। डॉ. शर्मा ने उससे कहा कि तुम्हारे लड़कों की माँ भी लड़की ही है। अगर वह न होती तो तुम्हें ये दो लड़के कैसे मिलते? मूसा शायद इतनी दूर तक सोचने वालों में नहीं है या वह बात समझ नहीं पाया और खामोश रहा।

अरबी खाने का मज़ा हम लोग अम्मान से ही ले रहे थे। हम अक्सर शाम को टहलते हुए अम्मान के पुराने इलाके में चले जाते थे, जो कभी-कभी पुरानी दिल्ली की याद ताज़ा करा देता था। खास तौर पर उस इलाके के होटलों का अन्दाज़ और माहौल बहुत हद तक पुरानी दिल्ली के होटलों जैसा था। डॉ. शर्मा अनुभवी आदमी हैं। वे मुझे रेस्तराँ में मेज़ पर बैठा कर खाने का ऑर्डर देने और भोजन का निरीक्षण करने चले जाते थे। हम दोनों या कहना चाहिए मुझसे ज़्यादा शर्मा जी भुने और सिके हुए मांस के शौकीन हैं। शर्मा जी का कहना है कि अच्छा खाना खाने से पहले अपने संस्कार को एक खाली प्लेट में निकाल कर कोने में रख देना चाहिए, इसलिए हम लोग वह सब खाते थे जो हमें अच्छा लगता था। अरबी सीख़ कबाब तो हमारे खाने में हुआ ही करते थे। अरबी, ईरानी और तुर्की सीख़ कबाब चपटी सीख़ों पर लगाये जाते हैं, जबकि हमारे यहाँ आम तौर पर गोल सीख़ें इस्तेमाल की जाती हैं। मैंने ईरान, तुर्की और जॉर्डन में जो कबाब खाये हैं उनका स्वाद लगभग एक जैसा ही लगा है। ईरानी कबाब में मसाला बहुत हल्का होता है। वैसे भी ईरानी और अरब मिर्च या गरम मसाले का इस्तेमाल नहीं करते हैं। इसी तरह तुर्की के सीख़ कबाब भी काफ़ी ‘सीधे-सीधे’ हुआ करते हैं। इनमें एक खास किस्म के सूखे मसाले और नमक के अलावा ज़्यादा कुछ नहीं होता।

कहा जाता है, सीख़ कबाब मध्य एशिया और अरब देशों का भोजन है जो वहाँ से यहाँ तक आया था, लेकिन यह बात दिलचस्पी से खाली न होगी कि वहाँ से यहाँ आये

सीख़ कबाब और मूल ईरानीयां अरबी सीख़ कबाब में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। भारतीय उपमहाद्वीप में सीख़ कबाब के जितने प्रकार हैं और उनके स्वाद में जो अन्तर है उसकी कल्पना भी अरबी, ईरानी नहीं कर सकते। हमारे यहाँ सीख़ कबाब, काकोरी सीख़ कबाब, रेशमी सीख़ कबाब, बिहारी सीख़ कबाब, डोरा सीख़ कबाब जैसी सीख़ कबाब की 'किस्से' ही नहीं हैं बल्कि पुराने शहरों और कस्बों में सीख़ कबाब के मसालों के साथ नये-नये प्रयोग करके अपनी 'अलग-अलग पहचान' बनाने की सफल कोशिश की गयी है। कबाब ही नहीं बल्कि दूसरे मध्य एशियाई खाने के साथ जो प्रयोग हिन्दुस्तान से किये गये हैं, वे कहीं और नहीं हुए हैं। मेरे खयाल से इसकी वजह हिन्दुस्तान के मसाले हैं। बिरयानी भी मध्य एशिया का ही पकवान है। लेकिन भारतीय बिरयानी ने नये-नये रूप धारण किये हैं और स्वाद के जिन धरातलों को स्पर्श किया है, वे दूसरे देशों की बिरयानी में नहीं दिखाई पड़ते हैं। दक्षिण भारत अर्थात् हैदराबाद की बिरयानी और दिल्ली या लखनऊ की बिरयानी बहुत अलग विधियों और मसालों से पकाई जाती है। मेरे खयाल से केवल खाना ही नहीं बल्कि संस्कृति के प्रत्येक क्षेत्र में जो प्रयोग और विविधता हिन्दुस्तान में लायी गयी है, वह मध्य एशिया या अरब देशों में नहीं है। यह बात ज़रूर है कि ईरान की तरह लखनऊ में बिरयानी की खुरचन को श्रेष्ठ बिरयानी माना जाता है, पर लखनऊ की बिरयानी के बारे में कहा जाता है कि वह खाने से ज़्यादा सूँघने की चीज़ है, जबकि ईरानी बिरयानी ऐसी नहीं होती।

विद्वान कहते हैं कि दो धाराओं के आपस में मिल जाने के बाद जो तीसरी धारा बनती है, वह पुरानी दोनों धाराओं की तुलना में अधिक अच्छी होती है। भारत के इतिहास में विभिन्न धाराओं का समाग़म समय-समय पर होता रहा है। बात केवल खाने और पहनने, ओढ़ने तक सीमित नहीं है, बल्कि धर्म और दर्शन तक जाती है। विश्व के अनेक धर्म और दर्शन भारत में आकर न केवल बदले हैं बल्कि उन्हें विस्तार भी मिला है।

बात दरअसल हो रही थी वादिए-मूसा के अरबी होटलों के खाने की। चूँकि वादिए-मूसा में हमारे पास समय और खास तौर पर शाम को अधिक समय हुआ करता था, इसलिए हम छोटे-से बाज़ार में टहलते थे, खाने के होटलों को देखने-परखने की कोशिश करते थे और फिर किसी स्थानीय लगने वाले रेस्तराँ में खाना खाते थे।

एक शाम अरबी खाना हमें महँगा पड़ गया था। दो-तीन हफ़्ते तक सस्ते अरब रेस्तराँ में खाना खाते रहने की वजह से हम लोगों को यह अन्दाज़ा हो गया था कि आम तौर पर हम दोनों के खाने का क्या 'बिल' आता है। वादिए-मूसा के उस रेस्तराँ में जो बिल आया वह हमारे अन्दाज़े से चार गुना ज़्यादा था। शर्मा जी बिल लेकर होटलवाले से बात करने गये। उसने उन्हें 'मेन्यू' दिखा दिया। 'मेन्यू' में वही दाम लिखे थे जो उसने 'बिल' में दर्ज किये थे। पर यह कीमत काफ़ी अविश्वसनीय लग रही थी। बाद में पता चला रेस्तराँ वाले स्थानीय लोगों से अलग 'रेट' लगाते हैं और बाहर से आये लोगों, पर्यटकों से दूसरा रेट लेते हैं। हमें इस बेईमानी की आशा नहीं थी। हमने यह देखा था कि जॉर्डन के शहरों में रात को बाज़ार बन्द हो जाने के बाद दुकानदार अच्छा-खासा सामान दुकान के बाहर बरामदों में रखा रहने देते हैं। वहाँ चोरी नहीं होती पर सीनाज़ोरी ज़रूर होती है। चोरी नहीं होती पर हेरा-फेरी होती है। चोरी नहीं होती पर ठगी होती है। यह सम्भवतः उन

शहरों में होता है जहाँ भारी संख्या में पर्यटक जाते हैं।

जीवन से जूझते

खालिद से कभी-कभी शाम को हमारी बातचीत हो जाया करती थी। वह इस बात पर हैरान था कि मेरे एक बेटा है और डॉ. शर्मा के एक बेटी है। उसने कहा था, "ऐसा क्यों है? भारत में इतने कम बच्चे क्यों होते हैं? या हम लोगों के और अधिक बच्चे क्यों नहीं हैं?"

वादिए-मूसा की सड़कों पर आवारागर्दी के दौरान हमारी मुलाक़ात मुहम्मद नाम के एक व्यवसायी से हो गयी जो दिल्ली से कई बार कुछ सामान लाकर जॉर्डन में बेच चुका था। मुहम्मद ने हमें अपने घर बुलाया। वह अकेला रहता है। उसके अनुसार उसकी पत्नी फ्रेंच है जो उसके दो बच्चों के साथ पेरिस में रहती है। मुहम्मद से हमने गाँव देखने की इच्छा व्यक्त की तो वह अगले दिन अपनी गाड़ी पर हमें गाँव दिखाने ले गया। उजड़े, सूखे और नंगे पहाड़ों पर इधर-उधर पत्थर के छोटे-छोटे घर बने थे, जिन्हें हमारी गाँव की परिभाषा के अन्तर्गत गाँव नहीं कहा जा सकता। एक घर के सामने मुहम्मद ने गाड़ी रोकी। बकरियाँ और भेड़ें चराने वाला एक लड़का और एक दूसरा नौजवान हमारे पास आये। मुहम्मद के माध्यम से बात होने लगी। पता यह चला, बेरोज़गारी है, लोगों के पास काम नहीं है, पैसा नहीं है। बुनियादी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं।

अगले गाँव में हम एक मकान पर गये। वहाँ एक बहुत बूढ़ा आदमी घर के बाहर फ़र्श पर बैठा था। वह ठीक से न तो सुन पाता था और न बोल पाता था। हमें उसकी उम्र 80 साल के ऊपर ही लगी। इस घर का एक बेरोज़गार नौजवान भी वहाँ मौजूद था। दो लड़के भी थे। पता चला, सात-आठ आदमियों के परिवार में सिर्फ़ एक आदमी सरकारी नौकरी में है, उसी के वेतन से घर चलता है। गाँव में न तो खेती-बाड़ी ही अच्छी है और न कोई दूसरा रोज़गार है। बूढ़े व्यक्ति ने हम लोगों को चाय पिलाई। बातचीत में पता चला कि बूढ़ा व्यक्ति कभी सेना में था और इज़राइल में युद्धबन्दी भी था। बूढ़े से बातचीत मुश्किल थी, क्योंकि मुहम्मद उसके कान के पास चिल्लाते थे तो वह सुनता था। चलते वक्त डॉ. शर्मा ने लड़कों को अच्छे-ख़ासे पैसे दिये जिन्हें धन्यवाद के साथ स्वीकार कर लिया गया।

मुहम्मद ने हमारे लिये रात के खाने का भी इन्तज़ाम किया था। स्थानीय लोगों से मिलने की हमारी इच्छा के तहत उसने अपने सम्बन्धियों के एक परिवार में हमें रात के खाने पर आमन्त्रित कराया था। यह काफ़ी बड़ी बात थी क्योंकि पता चला था कि अरब आम तौर पर इस तरह अजनबी लोगों को खाने पर घर नहीं बुलाते। एक हॉलनुमा कमरे में कालीन बिछे थे और तीन तरफ़ बड़े-बड़े सोफ़े रखे थे। हम सोफ़ों पर बैठ गये। कुछ देर बाद परिवार का एक युवक आया जो शायद पढ़ाई कर रहा था। इसके बाद हमें आश्चर्य हुआ जब परिवार की दो सुन्दर और युवा लड़कियाँ भी इस कमरे में आ गयीं। लड़कियाँ हिजाब किये थीं, मतलब उनके सिर ढँके थे; पूरी बाँह के कपड़े पहने थीं मगर चेहरा

खुला हुआ था। लड़कियाँ अंग्रेज़ी के दो-चार शब्द जानती थीं। इस बीच मुहम्मद घर के अन्दर चले गये थे। हम दोनों, युवा पीढ़ी से बतियाते रहे। लड़कियाँ हिन्दी फ़िल्मों को पसन्द करती थीं। हम लोगों से गाने की फरमाइश की गयी। मैंने अपनी भोंडी और भद्दी आवाज़ में गाना गया। डॉ. शर्मा ने एक गाना सुनाया जिसमें 'हमारा' शब्द जब भी आता था, लड़कियाँ हँसने लगती थीं। बाद में पता चला कि अरबी में गधे को 'हमारा' भी कहते हैं। इस बीच लड़कियों की माँ, एक अधेड़ उम्र औरत भी हमारी महफ़िल में शामिल हो गयी थी।

खाने का इन्तज़ाम शानदार था। एक बहुत बड़ी थाली में बिरयानी लाई गयी। खाने वाले सब इर्द-गिर्द बैठ गये और अपने-अपने सामने से खाना शुरू कर दिया। थाली इतनी बड़ी थी और चिकन बिरयानी इतनी ज़्यादा थी कि एक-दूसरे का जूठा नहीं खाना पड़ा। बिरयानी में सूखे मेवे भी मिले हुए थे। सूखे मेवों को 'टोस्ट' करके बिरयानी में मिलाया गया था। इस परिवार से मिलना और भोजन करना एक दुर्लभ अनुभव था। खाने में सिर्फ़ मर्द ही शरीक थे।

हम एक दिन धोखे से अक़ाबा भी पहुँच गये जो 'रेड सी' के किनारे जॉर्डन का एक बड़ा पर्यटन केन्द्र हैं। यहाँ लोग समुद्र में डुबकियाँ लगा कर समुद्र के अन्दर 'कोरल' आदि देखते हैं। हमारे अक़ाबा आने और यहाँ से वापस जाने का किस्सा हो सकता है लम्बा और उबाऊ लगे इसलिए छोड़ा जा सकता है। यह ज़रूर है कि यहाँ हम जिस मिनी बस से आये थे उसी में एक युवा जर्मन जोड़ा भी था, जिससे हमारी वक्ती दोस्ती हो गयी थी। अक़ाबा में ग्लास बोट पर चढ़कर समुद्र के नीचे का जीवन देखा था।

चलते-चलते हमें वादिए रम का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अरबी में रम का मतलब है रेता यानी रेत की घाटी जो 700 किलोमीटर में फैली हुई है। यह घाटी रेत के दूसरे मैदानों और 'सैण्ड ड्यून्स' से अलग है क्योंकि यहाँ रेत के मैदानों के साथ पहाड़ भी हैं जो घाटी को नया रंग देते हैं। रेत की घाटी को चाँद की घाटी भी कहा जाता है। शायद इसलिए कि यहाँ वह चाँद नहीं निकलता जो दूसरी जगहों पर निकलता है। कभी इस घाटी में हरियाली हुआ करती थी पर आज तो ऐसी मोटी घास होती है, जिसे ऊँट भी नहीं खाते। बताया गया कि घाटी के पहाड़ों पर 30,000 शिलालेख हैं जिन्हें यहाँ रहने वाले आदिवासियों ने समय-समय पर लिखा था। इनमें से कुछ ऐसे मद्धिम हो गये हैं कि ठीक से दिखाई भी नहीं पड़ते।

रेत घाटी की सुन्दरता वास्तव में किसी भी चित्रकार को हैरान कर सकती है। पानी, हवा और समय ने मिल कर पहाड़ों में जो आकृतियाँ बनाई हैं उनका कोई जवाब नहीं हो सकता। यदि इन्हें देखकर कुछ पहले का देखा याद आया तो वह केलांग से लेइ का रास्ता था। लेकिन इसकी सुन्दरता बिलकुल अलग ही लगी।

हमने रेत की घाटी देखने के लिये जो जीप किराये पर ली थी उसके ड्राइवर का नाम भी मुहम्मद था। लगता था मुहम्मद घाटी के चप्पे-चप्पे से वाक़िफ़ है। वह हमें बड़े मज़े से पहाड़ों में बने प्राकृतिक पुल और तरह-तरह की आकृतियाँ दिखा रहा था। रेत के

विशाल मैदानों की सुन्दरता सूरज की कम होती रोशनी में अधिक बढ़ गयी थी। ऐसे अद्‌भुत दृश्य देखे जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती। रेत के विशाल मैदानों को तेज़ हवा या आँधियाँ देखते-ही-देखते नये अंदाज़ में सँवार देती थीं। हर बार एक नयी छटा बनती और बिगड़ती थी।

रेत की घाटी की शोहरत की एक वजह यह भी है कि इसका नाम आयी.टी.ई. लारेंस या लारेंस ऑफ अरेबिया के नाम से जुड़ा है। 1917 में अरब विद्रोह के समय लारेंस ने इसी क्षेत्र में रह कर सम्राट हुसैन बिन अली की सेनाओं के साथ तुर्की साम्राज्य से इस क्षेत्र को मुक्त कराया था। अरब आज़ादी के महत्त्वपूर्ण प्रतीक के रूप में लारेंस विश्व प्रसिद्ध है। 'वादिए रम' में ही लारेंस रहते थे तथा न सिर्फ़ सेना को प्रशिक्षण देते थे बल्कि छापामार युद्धों में भाग भी लेते थे।

रेत की घाटी की ख्याति का एक कारण और है। जीप में बैठे जब हम घाटी का चक्कर लगा रहे थे तो हमने पहाड़ों के नीचे एक किला जैसा बना देखा पर पहली ही नज़र में पता चल गया कि यह वास्तविक किला नहीं है। पूछने पर पता चला कि यह 'सेट' है और वादिए रम में फिल्मों की शूटिंग भी होती है। 'लारेंस ऑफ अरेबिया' फ़िल्म की तो अधिकतर शूटिंग यहीं हुई थी। इसके अलावा हॉलीवुड ही नहीं बॉलीबुड के निर्देशकों की भी यह प्रिय लोकेशन है। हिन्दी फ़िल्म कृश-3 के गाने "दिल तू ही बता..." की शूटिंग यहीं हुई थी।

जॉर्डन छोटा-सा अरब देश है जो योरोप या अमेरिका की तुलना में भारत के बहुत निकट है और यह देश पर्यटकों के लिये विशेष महत्त्व रखता है। लेकिन दुःख की बात है कि भारत से बहुत कम पर्यटक जॉर्डन जाते हैं। पिछले तीन सौ साल में भारत के बहुत मज़बूत रिश्ते योरोप के साथ बन गये हैं। इसमें कोई नुक़सान नहीं है। लेकिन योरोप की 'निकटता' के कारण भारत अपने पड़ोसियों और पुराने मित्रों से दूर हो गया है, यह चिन्ता की बात है। सच्चाई यह है कि धर्म, भाषा, कला, साहित्य और संस्कृति के स्तर पर भारत की जो निकटता एशिया के देशों के साथ है वह योरोप के साथ नहीं है। पड़ोसी की उपेक्षा से अपनी ही उपेक्षा होती है।

मारामारोश
योरोप का मध्यकाल

बुदापैश्त के कैल्लेती रेलवे स्टेशन पर मैं इस प्लेटफ़ॉर्म से उस प्लेटफ़ॉर्म के चक्कर लगा रहा था और मुझे वह ट्रेन नहीं मिल रही थी जिससे मुझे चीकसैरेदा (रोमानिया के ट्रांसलवानियाँ इलाके का एक शहर) जाना था। मेरे पास जो टिकट था उस पर ट्रेन का नम्बर लिखा हुआ था। लेकिन रेलवे स्टेशन पर लगे सूचना बोर्ड पर ट्रेनों के नाम लिखे हुए थे। मैं ट्रेन के नम्बर के अनुसार यह देखना चाहता था कि ट्रेन किस प्लेटफॉर्म से जा रही है। लेकिन बोर्ड पर ट्रेन का नम्बर नहीं था। एक-दो बार सूचना देने वाले के कार्यालय से भी सम्पर्क किया लेकिन कुछ पता न चल सका।

दरअसल हंगरी में अब भी अंग्रेज़ी समझने और बोलने वाले काफ़ी कम हैं। पूँजीवाद के रास्ते पर आगे बढ़ जाने वाले इस भूतपूर्व समाजवादी देश में अंग्रेज़ी की पढ़ाई तो बड़े स्तर पर चालू हो गयी है, लेकिन वह अभी युवा वर्ग तक ही सीमित है। जवान लड़के और लड़कियाँ आम तौर पर अंग्रेज़ी जानते हैं लेकिन अधेड़ और बूढ़े लोग अंग्रेज़ी नहीं जानते। ये भी एक रोचक तथ्य है कि हंगरी में अलग-अलग पीढ़ियाँ अलग-अलग विदेशी भाषाएँ बोलती हैं। उदाहरण के लिये बूढ़े लोग प्रायः जर्मन भाषा जानते हैं। अधेड़ उम्र वाले रूसी भाषा जानते हैं और युवा लोग अंग्रेज़ी। इसका कारण यही है कि दूसरे विश्व युद्ध से पहले हंगरी जर्मनी के प्रभाव में था। उसके बाद रूस के प्रभाव में आ गया था और आजकल अमेरिका के प्रभाव में है।

भाषा के इस हेर-फेर के कारण विदेशियों को अच्छी-खासी परेशानी हो जाती है। ट्रेन छूटने में बहुत कम समय रह गया था और यह डर था कि शायद ट्रेन छूट न जाये। अचानक ही यह ध्यान आया कि ट्रेन के टिकट पर प्लेटफ़ॉर्म नम्बर भी लिखा हुआ है और मैं सीधा उस प्लेटफ़ॉर्म पर पहुँचा। बाहर खड़े टिकट चैकर को टिकट दिखाया तो उसने स्वीकार कर लिया। मेरी जान में जान आयी। मतलब मैं सही ट्रेन पर आ गया हूँ। टिकट चैकर ने मुझे कूपे में बैठाया। यात्रा क्योंकि रात भर की थी इसलिए स्लीपर का टिकट लिया था। कूपा साफ़-सुथरा था। बर्थ पर सफ़ेद चादर बिछी हुई थी और तकिया रखा हुआ था।

यात्रा शुरू हो गयी। कुछ घंटों बाद टिकट चैकर ही नाश्ता लेकर आया। इस बात पर मुझे थोड़ा-सा आश्चर्य हुआ क्योंकि हमारे यहाँ टिकट चैकर यात्रियों को नाश्ता, खाना नहीं देता बल्कि उसके लिये केटरिंग का अलग स्टाफ़ होता है। टिकट चैकर को मैंने यह बताने की कोशिश की कि मैं पहली बार चीक़सैरेदा जा रहा हूँ और मुझे यह पता नहीं है कि स्टेशन सुबह कब आयेगा। क्या वह कृपा करके मुझे स्टेशन आने से पहले यह

बतायेगा कि स्टेशन आ रहा है। टिकट चैकर मेरी बात समझ गया। एक दूसरी समस्या यह थी कि रोमानिया के ट्रांसलवानियाँ के इलाके में हर जगह के दो नाम हैं— एक नाम हंगेरियन भाषा में है और दूसरा नाम रोमानिया की भाषा में है। सरकारी तौर पर रोमानिया भाषा के नाम को ही मान्यता दी जाती है। चीक़सैरेदा हंगेरियन भाषा का नाम है। मुझे उसका रोमानियन रूप नहीं मालूम था।

सुबह टिकट चैकर ने मुझे बताया कि मेरा स्टेशन आ गया। खिड़की से बाहर देखने पर यह पता नहीं चला कि स्टेशन कहाँ है। रेलवे लाइन के बीच में गाड़ी रुक गयी थी। काफ़ी लोग उतर रहे थे। मैं भी अपना सामान लेकर नीचे उतरा। मुझे यह बताया गया था कि ठहरने की जगह स्टेशन से बहुत दूर नहीं है और मैं टैक्सी लेकर या पैदल वहाँ पहुँच सकता हूँ। मेरे पास बहुत थोड़ी-सी रोमानिया की करेंसी 'लिव' थी। ख़ैर, नीचे उतरा तो एक आदमी इंडिया-इंडिया कहता हुआ दिखाई दिया। मैं सीधा उसके पास पहुँचा। पता चला कि वह मुझे लेने आये हैं। उन्होंने अपना नाम बॉच बेला बताया। वह अंग्रेज़ी बोल रहे थे और इस कारण कोई कठिनाई नहीं हो रही थी। बॉच बेला ने मुझे विश्वविद्यालय के हॉस्टल के कमरे में पहुँचाया और यह कहकर चले गये कि लंच के समय मुझे कोई लेने आयेगा। इसका मतलब यह था कि नाश्ते का इन्तज़ाम मुझे खुद करना पड़ेगा। मेरे खयाल से मेरे पास इतने लिव थे कि उससे नाश्ता किया जा सकता था।

बाहर निकल कर इधर-उधर घूमने लगा। सुबह के लगभग सात बजे थे और दुकानें बन्द थीं। शहर साफ़-सुथरा और नया लग रहा था। उसके ऊपर पूरी तरह समाजवादी देशों जैसी छाप थी। टहलते-टहलते मैं एक छोटे-से स्टोर पर पहुँचा जो खुला हुआ था। अन्दर जाकर ब्रेड और मक्खन खरीदा। बाहर एक पार्क में बैठकर नाश्ता किया और शहर को इस तरह देखना शुरू किया कि जहाँ ठहरा हुआ हूँ वहाँ का रास्ता न भूल जाऊँ।

चीकसैरेदा

जब भी मैं विदेश से लौटकर आता हूँ तो आम तौर पर रोता हूँ। इसलिए नहीं कि विदेश जाने पर पछताता हूँ या विदेश में मेरा साथ कुछ इतना बुरा होता है कि लौट कर रोना पड़ता है। ऐसा भी नहीं है कि मैं अपने देश से इतना प्रेम करता हूँ कि कुछ महीनों की जुदाई सह नहीं पाता और रोने लगता हूँ।

चलिये मैं आपको कारण बताता हूँ, अपने रोने की वजह बताता हूँ। योरोप या अन्य जगह के देश और शहर देखकर बहुत खुशी होती है। बड़े-बड़े देशों और धनवान देशों की बात छोड़ दीजिए। साधारण देशों के शहर, कस्बे और यहाँ तक कि गाँव भी ऐसे होते हैं जिन्हें देखकर खुशी होती है।

योरोप के सामान्य देशों या कहना चाहिए योरोप के गरीब देशों जैसे रोमानिया के एक कस्बे चीकसैरेदा को देखकर लगता है कि यहाँ सफ़ाई है। बहुत सफ़ाई है। दिल्ली की तरह सड़कों के किनारे सड़ता हुआ कूड़ा देखने को नहीं मिलता। सड़कों के इधर-उधर फुटपाथ हैं जहाँ लोग बड़े आराम से चल सकते हैं। सड़कें पार करने के लिये स्ट्रीट लाइट हैं, ज़ेबरा क्रॉसिंग हैं। सब लोग लाल बत्ती पर गाड़ी रोकते हैं और हरी हो जाने पर आगे बढ़ाते हैं। शहर में जगह-जगह बड़े-बड़े खूबसूरत पार्क हैं। साफ़-सुथरी इमारतों के बीच प्लाज़ा है जहाँ खुले में लोग बैठ सकते हैं। न तो कोई भिखारी दिखाई देता है और न कोई मरियल रिक्शेवाला या फल्लीवाला नज़र आता है। मतलब गरीबी ही नहीं भुखमरी वाली गरीबी भी कहीं नज़र नहीं आती। हाँ, ग़रीब-अमीर का फर्क़ नज़र आता है लेकिन उतना नहीं जितना अपने यहाँ दिखाई पड़ता है।

चीकसैरेदा से जब मैं दिल्ली आया तो रोया, क्योंकि एक सामान्य से देश के छोटे से कस्बे में जो है वह दिल्ली में नहीं है। जबकि हम देश प्रेम के गाने गाते थकते नहीं। अपनी प्रशंसा करने में लिप्त रहते हैं। अपने आपको महान मानते हैं। न कुछ और देखते हैं और न सुनते हैं? यदि कोई किसी कमी की तरफ़ इशारा करता है तो उसके दुश्मन हो जाते हैं।

चीकसैरेदा मैं क्यों गया था? ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में डॉ. इमरै बंगा हिन्दी और उर्दू पढ़ाते हैं। वे हिन्दी के अलावा ब्रजभाषा के भी विद्वान हैं। उन्होंने चीकसैरेदा में आधुनिक हिन्दी ग्रीष्मकालीन, अन्तरराष्ट्रीय शिविर का आयोजन (19-30 अप्रैल, 2013) में किया था जिसमें भारत के अलावा रोमानिया, इटली, पोलैण्ड, स्विट्ज़रलैंड, अमेरिका और हंगरी के हिन्दी विद्वान शामिल हुए थे। इस शिविर में हिन्दी पाठ पढ़े जाते थे। पाठ पढ़ना कितना गम्भीर काम है उसकी पूरी जानकारी मुझे यहीं मिली। एक-एक शब्द और वाक्य का 'पोस्टमार्टम' जैसा यहाँ देखा, वह सराहनीय है। इस शिविर की एक विशेषता यह थी कि आधे दिन हम लोग चीकसैरेदा की हंगेरियन यूनिवर्सिटी के अन्दर काम करते थे और लंच के बाद यह शिविर बाहर खुले में किसी मनोरम स्थान पर होता

था। झील के किनारे, पहाड़ों की छाया में या जंगल के अन्दर सूखे पेड़ों के तनों पर बैठ कर हिन्दी पाठ का विश्लेषण किया जाता था। शिविर की दूसरी विशेषता यह थी कि रात के खाने के बाद सभी प्रतिभागी पुराने बाज़ार के किसी बार में जाते थे जहाँ रात देर तक गप-शप, गाना-बजाना और पीना-पिलाना चलता रहता था।

चीकसैरेदा रोमानिया के इलाके ट्रांसलवानिया का एक कस्बा है। ट्रांसलवानिया का इतिहास योरोप की महाशक्तियों के शक्ति प्रदर्शन का इतिहास रहा है। कभी यह क्षेत्र हंगरी में रहा तो कभी रोमानिया में। पहले विश्वयुद्ध के बाद हंगरी को सज़ा देने के लिये महाशक्तियों ने यह इलाका रोमानिया को दे दिया था, लेकिन आज भी इस इलाके में हंगेरियन लोगों की अच्छी-खासी आबादी है और क्षेत्र में हंगेरियन बनाम रोमानियन तनाव भी दिखाई पड़ता है। इस तनाव का ज़िक्र आगे भी आयेगा।

मध्य एशिया के हूण

इतिहासकार बताते हैं कि नवीं शताब्दी में मध्य एशिया से एक जनजाति योरोप की ओर चली थी, जिसका नाम 'हूण' था। हूण मध्य एशिया में कहाँ रहते थे, यह आज तक विवाद का विषय है। लेकिन इतना तय है कि हूण मध्य एशिया से ही गये थे। हूणों के साथ अन्य जनजातियाँ भी इस महापलायन में शामिल थीं। एक किवदंती के अनुसार इन जनजातियों ने एक बर्तन में अपना खून मिला दिया था और यह स्वीकार कर लिया गया था कि अब वे सब एक हैं। हंगेरियन इन्हें जनजातियों का सम्मिश्रण मानते हैं। मध्य एशिया में बसी ये जनजातियाँ ट्रांसलवानिया के इलाके को अपनी भाषा में जंगलों के पीछे का इलाका कहा करती थी। बाद में इसके लिये लैटिन शब्द ट्रांसलवानिया का प्रयोग होने लगा था। यह क्षेत्र कभी रोमन साम्राज्य का हिस्सा हुआ करता था। 896 ईस्वी में हंगेरियन और अन्य जातियाँ यहाँ बस गयी थीं। 10वीं शताब्दी में इस क्षेत्र पर हंगेरियन राजाओं का अधिकार था। उस समय यहाँ मूल रोमानिया वासी भी रहा करते थे। लेकिन यहाँ प्रभुत्व हंगेरियन सामंतों का ही था, जबकि संख्या में रोमानी लोग अधिक थे।

सन् 1000 से 1526 तक इस क्षेत्र में हंगेरियन साम्राज्य के अन्तर्गत सेकलेई लोग (हंगरी के दूसरे क्षेत्रों से) सैक्सन (जर्मन मूल के लोग) हंगेरियन साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त शासन करते थे। इनके साथ कुछ हंगेरियन सामंत भी ट्रांसलवानिया के बड़े क्षेत्रों पर राज करते थे। सन् 1437 में एक किसान विद्रोह और तुर्की आक्रमण की सम्भावना के कारण हंगेरियन और सेकलेई तथा सैक्सन सामंतों ने मिलकर एक गठबंधन बना लिया था जिसका नाम 'यूनियन ऑफ़ थ्री नेशंस' रखा गया था। इस गठबंधन में रोमानिया के लोग सम्मिलित नहीं किये गये थे। इतिहासकार कहते हैं कि ये वही बिन्दु है जहाँ से हंगरी और रोमानिया के लोगों के बीच कलह की शुरुआत होती है।

इतिहास के कई युगों से गुजरता यह कलह प्रथम विश्व युद्ध के बाद एक विस्फोटक स्थिति में पहुँच गया था। रोमानिया ने प्रथम विश्व युद्ध के एलाइड गठबंधन का साथ देने के संदर्भ में यह समझौता किया था कि यदि युद्ध में एलाइड शक्तियों की विजय होती है तो ट्रांसलवानिया का इलाका रोमानिया को दे दिया जायेगा। युद्ध के अन्त में यही हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध में फिर इसे दोहराया गया और आखिरकार ट्रांसलवानिया पर रोमानिया का पूरा अधिकार हो गया। इन राजनैतिक परिवर्तनों ने ट्रांसलवानिया की स्थिति को एक नाटकीय मोड़ दिया। हंगेरियन लोग जो सत्ता में थे वे बाहर हो गये। रोमानिया के लोग राजनैतिक सत्ता पा गये। इसके परिणामस्वरूप दोनों समुदायों के बीच ट्रांसलवानिया में शीत युद्ध शुरू हो गया। राजनैतिक प्रभुत्व समाप्त हो जाने के बाद हंगेरियन लोगों के सांस्कृतिक प्रभुत्व को भी समाप्त करने के लिये प्रयास किये गये और धीरे-धीरे ट्रांसलवानिया से हंगेरियन पलायन करने लगे। स्थिति उस समय और बिगड़ गयी जब

रोमानिया के दूसरे क्षेत्रों से रोमानिया के लोगों को लाकर हंगेरियन क्षेत्रों में बसाया गया। बहुत से ऐसे कानून बनाये गये जिनके कारण हंगेरियन जनसंख्या कम होती रहे।

हंगरी की राजनीति में ट्रांसलवानिया एक प्रमुख मुद्दा बन चुका है। हंगरी की वर्तमान दक्षिण पंथी सरकार ट्रांसलवानिया में हंगेरियन समस्या को एक भावनात्मक समस्या बना चुकी है। हंगरी और रोमानिया के बीच इस तनाव को कम करने के लिये प्रयास किये जा रहे हैं। उदाहरण के लिये रोमानिया की हंगेरियन आबादी को दो नागरिकताएँ रखने का अधिकार मिल गया है लेकिन फिर भी यह मुद्दा सुलझ नहीं रहा है। हंगरी के दक्षिण पंथी नेताओं की माँगें लगातार बढ़ रही हैं। मैंने चीकसैरेदा की कई दुकानों पर हंगेरियन झंडे लगे देखे और यह बताया गया कि हंगेरियन अल्पसंख्यक कुछ ऐसी माँगें कर रहे हैं जो रोमानिया की सरकार को स्वीकार नहीं हैं। रोमानिया के एक कानून के अन्तर्गत यदि हंगेरियन और रोमानियन के बीच विवाह होता है तो उनकी सन्तानों को रोमानी नागरिक माना जायेगा। इसी के साथ-साथ स्कूलों और कॉलेजों में हंगेरियन भाषा की पढ़ाई भी बन्द कर दी गयी है और भी बहुत-सी ऐसी स्थितियाँ पैदा हो गयी हैं जिनके कारण हंगेरियन आबादी घट रही है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि हंगेरियन ट्रांसलवानिया से बड़ी संख्या में पलायन करके हंगरी जा रहे हैं, क्योंकि वहाँ अधिक सम्भावनाएँ और सुरक्षा है।

चीकसैरेदा उन शहरों में गिना जाता है जहाँ अब भी हंगेरियन उपस्थिति दर्ज की जा सकती है। लेकिन यह उपस्थिति बहुत सहज नहीं है। बातचीत के दौरान मैंने हंगेरियन लोगों को बहुत उदास और अशान्त पाया। इसका एक उदाहरण बॉच बेला हैं जो मुझे लेने चीकसैरेदा के स्टेशन पर आये थे।

तानाशाह का संदेश

रोमानिया से जुड़े दो नाम पूरी दुनिया में मशहूर हैं। एक नाम है ड्रेकुला और दूसरा नाम है निकोलेइ चाउशेस्कू (Nicolae Ceausescu)। जो 1974 से 1989 तक रोमानिया के तानाशाह थे। ड्रेकुल्ला रोमानिया की लोककथाओं, कहानियों, उपन्यासों और फ़िल्मों का वह पात्र है जो खून चूसकर हत्या कर देता है। आज ड्रेकुला रोमानिया के पर्यटन उद्योग का एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। उसके नाम पर हज़ारों पर्यटक रोमानिया आते हैं।

चाउशेस्कू को कम्यूनिस्ट तानाशाह माना जाता है जिस पर मानव अधिकारों के हनन, नागरिकों के उत्पीड़न, जन आंदोलनों को कुचलने, ऐश और आराम से जीवन बिताने, प्रतिरोध को कुचलने, धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाने, सूचना माध्यमों को आत्म प्रचार का माध्यम बना देने आदि के सैकड़ों मामले हैं। आज चाउशेस्कू रोमानिया ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया में विश्व के दुर्दांत तानाशाहों में गिना जाता है।

सुबह जल्दी उठ कर कार्यशाला शुरू होने से पहले मैं चीकसैरेदा की सड़कें नापा करता था। सुन्दर कस्बा पैंतालीस मिनट की टहल में खत्म हो जाता था। यह भी साफ़ ज़ाहिर होता था कि कस्बे के दो हिस्से हैं। एक पुराना हिस्सा है जहाँ बड़ी शानदार महलनुमा इमारतें हैं, पुराने मकान हैं, घंटाघर हैं, गिरजाघर, हैं, संग्रहालय हैं। दूसरा हिस्सा नया बना है। इस हिस्से में आठ-दस मंज़िला ऊँची इमारतें हैं जो रिहायशी हैं। चौड़ी सीधी साफ़-सुथरी सड़कें हैं। बाग़ हैं, फ़ुटपाथ हैं, प्लाज़ा है। बाज़ार और दुकानें हैं। लेकिन सब व्यवस्थित हैं। जिन्हें देखकर लगता है कि ये इमारतें या शहर का यह हिस्सा किसी योजना के अन्तर्गत एक साथ बनवाया गया होगा। दिमाग़ में यह सवाल आना लाज़िमी था कि यह नया चीकसैरेदा कब बना था। किस शासन में बनवाया गया था? ज़ाहिर-सी बात है कि इन सवालों का जवाब हमारे स्थानीय मित्र और गाइड बॉच बेला ही दे सकते थे। उन्होंने बताया कि नया शहर चाउशेस्कू के शासनकाल में बना था। यह जानकर कुछ आश्चर्य हुआ क्योंकि एक आत्मलिप्त, तानाशाह, जन आकांक्षाओं को कुचलने और लोकतंत्र को पामाल करने वाला जनता के लिये नये शहर क्यों बनवायेगा? उसके बारे में तो यह मशहूर है कि उसने अपने लिये दसियों महल बनवाये थे।

बॉच बेला ने बताया कि चाउशेस्कू ने पुराने सुन्दर शहर के बहुत से हिस्से तोड़ कर नया शहर बनाया था। उन्होंने नये शहर के लिये 'कंकरीट का जंगल' शब्द भी इस्तेमाल किया था। मैं सोचने लगा, अगर चाउशेस्कू का उद्देश्य शहर की शानदार इमारतों और स्थापत्य कला को समाप्त करना होता तो उसने सबसे पहले वे शानदार पुरानी इमारतें तोड़ी होतीं जो आज भी चीकसैरेदा में देखी जा सकती हैं। इसका यही मतलब है कि पुराने शहर के कुछ हिस्सों को तोड़ कर नया शहर बनाने के पीछे कुछ और ही मक़सद रहा होगा। मेरी इस जिज्ञासा का समाधान कुछ दिनों बाद हुआ जब एक स्थानीय व्यक्ति

ने बताया कि पुराने शहर के कुछ हिस्से में इतने पुराने और बड़े घर थे कि उनकी न तो मरम्मत की जा सकती थी और न उनमें 'हीटिंग' और 'रनिंगवॉटर' आदि आधुनिक सुविधाएँ दी जा सकती थीं। इसके अलावा आबादी का दबाव बढ़ रहा था। ऐसी हालत में शहर के पुराने हिस्सों को तोड़ कर नया शहर बनाया गया था। हज़ारों लोगों को फ्लैट उपलब्ध कराये गये थे। और इस तरह यह 'कंकरीट का जंगल' खड़ा हुआ था। मैंने गगनचुंबी इमारतों के शहरों के लिये 'कंकरीट के जंगल' की अभिव्यक्ति अक्सर सुनी है। लेकिन मैंने न्यूयार्क के बारे में ऐसा कहते किसी को नहीं सुना। यह काफ़ी रोचक और विचार करने लायक बात है कि जिस देश की संस्कृति ने 'कंकरीट का जंगल' जैसी अभिव्यक्ति को जन्म दिया उसी देश में बने सबसे बड़े कंकरीट के जंगल के बारे में यह नहीं कहा जाता कि वह कंकरीट का जंगल है। मुझे यह भी लगा कि लगभग हर आदमी चाउशेस्कू की तानाशाही की चर्चा तो बड़े ज़ोर-शोर से करता था लेकिन उसके समय में जो नया शहर बनाया गया था उसकी कोई बात नहीं करता था। ऐसा आम तौर पर होता है कि बुराई अच्छाई को ढँक लेती है लेकिन पढ़े-लिखे जागरूक समाज भावनाओं पर नहीं, तथ्यों पर अपनी धारणा बनाते हैं।

अंधा औद्योगीकरण

वर्तमान और अतीत के बीच रिश्ता जोड़ने के सिलसिले में मैं चाउशेस्कू और कम्युनिस्ट रोमानियाँ के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारियाँ जमा करने लगा। पता चला कि कभी बुखारेस्ट की गलियों में हड़ताल के पक्ष में लड़ाई-झगड़ा करने और जेल जाने वाला युवक कैसे धीरे-धीरे देश का राष्ट्रपति नहीं बल्कि तानाशाह बन गया था। 1965 में कम्युनिस्ट पार्टी का महासचिव और 1967 में राष्ट्रपति का पद ग्रहण करने वाले चाउशेस्कू का जीवन नाटकीय घटनाओं से भरा पड़ा है। प्रारंभ में वह रोमानिया की जनता का प्रिय नेता ही नहीं पश्चिमी देशों का लोकप्रिय नेता भी था। चाउशेस्कू ने सोवियत संघ की एकाधिकारवादी और साम्राज्यवादी नीतियों के खिलाफ़ खुला 'स्टैण्ड' लिया था। पश्चिम के पूँजीवादी देश, चाउशेस्कू को 'आयरनवाल' के अन्दर एक ऐसा प्रभावशाली नेता मानने लगे थे जो आगे चल कर उन्हें समर्थन दे सकता था। रोमानिया पहला कम्युनिस्ट देश था। जिसने पश्चिमी जर्मनी को मान्यता दी थी, अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता ली थी, अमेरिका के राष्ट्रपति निक्सन का स्वागत किया था, योरोपियन आर्थिक समुदाय का सदस्य बना था। रोमानिया अकेला कम्युनिस्ट देश था जिसके इज़राइल और पीएओ से राजनयिक संबंध थे। पश्चिमी योरोपीय देशों ने चाउशेस्कू के विचारों और नीतियों से प्रभावित होकर उसे बड़े-बड़े सम्मान दिये थे। फ्रांस ने उन्हें 'लीजन ऑफ़ ऑनर' (Legion of Honour) और ब्रिटेन ने 'जी.सी.बी.' जैसा प्रतिष्ठित सम्मान दिया था। स्वीडेन और डेनमार्क की सरकारों ने भी उन्हें बड़े अवॉर्ड दिये थे। चाउशेस्कू की स्कूल 'ड्राप आउट' पत्नी इलिना चाउशेस्कू को अमेरिका की प्रतिष्ठित 'साइंस अकादमी' का सदस्य चुना गया था। यह वही इलिना है जिसकी हीरे जवाहारात ही नहीं बल्कि जूतों के 'क्लेक्शन' की भी बड़ी चर्चा रही थी। रोचक बात यह है कि पश्चिमी योरोप और अमेरिका द्वारा दिये गये ये सम्मान चाउशेस्कू की गिरफ्तारी और फिर सैनिक अदालत द्वारा गोली मार दिये जाने की सज़ा दिये जाने के एक-दो दिन पहले ही वापस ले लिये गये थे।

रोमानिया के अन्दर ट्रेनों या बसों से यात्रा करते हुए रास्ते में बड़े विशाल कारखाने दिखाई पड़ते हैं जो बन्द पड़े हैं। कारखानों की संख्या और विशालता देखकर अदाज़ा लगाया जा सकता है कि उनमें कितना पैसा लगाया गया होगा जो बर्बाद हो गया है। कम्युनिस्ट देशों में व्यक्ति केन्द्रित सत्ता और लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अभाव के कारण ऐसे अव्यावहारिक फ़ैसले लिये जाते थे जिनसे करोड़ों, खरबों का नुकसान होता था पर चूँकि सत्ताधारियों की कोई जवाबदेही न थी इसलिए यह सब चलता था।

रोमानिया के तानाशाह ने यह निर्णय लिया कि अपने खेती प्रधान देश का विकास करने के लिये औद्योगिक प्रगति आवश्यक है। दरअसल यह बहुत रोचक मुद्दा है कि

विकास को औद्योगिक विकास का पर्याय क्यों मान लिया गया था? क्या विकास का अर्थ केवल भौतिक विकास लगाया गया था? क्या औद्योगीकरण से पहले कोई मानव समाज विकसित नहीं था? दरअसल योरोप के चतुर औद्योगिक व्यवस्था के पक्षधर सिद्धान्तकारों ने पूरे संसार को इस बात पर 'कन्विन्स' कर दिया था कि विकास औद्योगिक प्रगति के बिना सम्भव नहीं है। यह स्वीकार कर लेने के बाद निश्चित रूप से औद्योगिक स्तर पर विकसित देशों को अपना उद्योग फैलाने और अपनी मशीनें बेचने, अधिक पैसा कमाने के लिये नये-नये क्षेत्र मिल गये थे। यह भी स्थापित किया गया था कि अच्छा जीवन स्तर क्या है और इस स्तर को बनाने के लिये भी औद्योगिक प्रगति आवश्यक है। हमारे देश में आज़ादी के बाद नेहरू भी इस लपेट में आ गये थे लेकिन उन्होंने चाउशेस्कू की तरह 'लम्बी छलांग' नहीं लगाई थी। चाउशेस्कू ने पश्चिम की 'प्रगति' से प्रभावित होकर अपने कृषि प्रधान देश को औद्योगिक देश बनाने के लिये पूँजीवादी देशों और बैंकों से 13 बिलियन डालर से अधिक कर्ज़ लिया था। तानाशाह ने अपने देश में 'कोर इंडस्ट्री' के विकास की योजनाएँ क्रियान्वित करते समय यह नहीं सोचा था, या उन्हें नहीं बताया गया था कि 'कोर इंडस्ट्री' के विकास के लिये कच्चे माल की ज़रूरत पड़ती है जो रोमानिया के पास नहीं है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली घटनाओं, जैसे ईरान की इस्लामी क्रान्ति आदि ने रोमानिया के औद्योगिक विकास में ऐसा ब्रेक लगाया कि देश भयावह कर्ज़ में डूब गया। औद्योगिक विकास पर बल दिये जाने के कारण कृषि क्षेत्र की उपेक्षा हुई थी, जिसके चलते पैदावार पर भी असर पड़ा था। चाउशेस्कू ने विदेशी कर्ज़ लौटाने के लिये भी उतनी ही जल्दी दिखाई जितनी कर्ज़ लेते समय दिखाई थी। रोमानिया में पैदा प्रत्येक वस्तु नियत की जाने लगी। इसका प्रभाव घरेलू बाज़ार पर पड़ा। महँगाई, बेरोज़गारी और निर्यात नीतियों को लागू करने के लिये चाउशेस्कू तानाशाह बन गये।

परिणामस्वरूप एक समय का लोकप्रिय नायक घृणित तानाशाह में बदल गया। आखिरकार रोमानिया के ऊपर जो विदेशी कर्ज़ था वह उतर गया था लेकिन इस प्रक्रिया से बहुत कुछ बर्बाद हो गया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक में जब पूर्वी और मध्य योरोप की समाजवादी सरकारें धराशायी होने लगीं तो चाउशेस्कू की गद्दी भी पलट गयी। उन्होंने रोमानिया से भागने का प्रयास किया लेकिन आखिरकार तानाशाह को गिरफ्तार कर लिया गया और एक संक्षिप्त कार्यवाही के बाद चाउशेस्कू और इलिना की गोलियाँ चला कर हत्या कर दी गयी उस समय चाउशेस्कू इंटरनेशनल गा रहे थे। चाउशेस्कू को तुरत-फुरत क्रिसमस के दिन मौत की सज़ा दिये जाने पर रोमानिया के अस्थायी अध्यक्ष ने 2009 में कहा था कि 'वह काफ़ी शर्मनाक लेकिन आवश्यक था।' यह भी बड़ा विडम्बनापूर्ण तथ्य है कि चाउशेस्कू दंपति अन्तिम लोग थे जिन्हें रोमानिया में फाँसी की सज़ा दी गयी, क्योंकि 7 जनवरी, 1990 को देश के कानून के अनुसार मृत्युदंड वर्जित करार दे दिया गया।

आज रोमानिया में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता समाप्त करने वाले तानाशाह

चाउशेस्कू की प्रशंसा करना अपराध है। इस जुर्म में सज़ाएँ भी दी गयी हैं। रोमानिया के टी. 3 चैनल पर चाउशेस्कू का चित्र दिखाने और उनकी प्रशंसा करने के आरोप में पत्रकार डिनेल सैतु पर 9000 डॉलर का जुर्माना किया गया था। पर यह भी एक विडम्बना है कि 2010 में किये गये एक सर्वेक्षण के अनुसार 41% रोमानी लोगों ने चाउशेस्कू के पक्ष में मतदान दिया था और 63% का सोचना है कि उनका जीवन 1989 से पहले अधिक अच्छा था।

रोमानिया ही नहीं मध्य और पश्चिमी योरोप में घूमते हुए मैंने यह अनुभव किया कि इस क्षेत्र में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद बनी वामपंथी सरकारों और मार्क्सवाद के विरुद्ध एक वैचारिक युद्ध छिड़ा हुआ है। यह प्रमाणित किया जा रहा है कि उस समय उस व्यवस्था के अन्तर्गत जो भी था वह ख़राब था, ग़लत था, जनविरोधी था। इसमें सन्देह नहीं कि वे सरकारें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मानव अधिकारों पर अंकुश लगाने वाली सरकारें थीं। उस व्यवस्था में लोकतंत्र का नितान्त अभाव था। तानाशाही प्रवृत्ति ने बदलाव और परिवर्तन के रास्ते बन्द कर दिये थे। जन आंदोलनों को बलात् कुचला जाता था। लेकिन इसके बावजूद उन सरकारों की कुछ उपलब्धियाँ भी थीं। जिनकी प्रायः उपेक्षा की जाती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, सहकारिता के क्षेत्र में उन सरकारों के अभूतपूर्व योगदान की चर्चा नहीं होती।

मारामारोश की तरफ़

चीकसैरेदा में कार्यशाला समाप्त हो जाने के बाद मैंने रोमानिया और यूक्रेन के सीमावर्ती इलाके मारामारोश जाने का फैसला किया। मारामारोश जाने की कई वजहें थीं। पहली वजह तो यही थी कि यह इलाका योरोप के इतिहास की खिड़की माना जाता है। कहते हैं, दो सौ साल पहले का योरोप देखना हो तो मारामारोश में देखा जा सकता है। लकड़ी के सुन्दर घर हैं, किसान आज भी घोड़ा गाड़ी का इस्तेमाल करते हैं। घोड़ों से खेत जोतते और किसानी के दूसरे काम करते हैं। वहाँ लकड़ी की विश्व प्रसिद्ध चर्च है। प्राकृतिक सुन्दरता के अलावा इलाके में प्रसिद्ध प्राचीन शहर है जो कभी बहुत महत्त्वपूर्ण हुआ करता था।

मारामारोश जाने से पहले यह सोचा कि अगर कोई गाइड मिल जाये तो अच्छा हो क्योंकि इलाका बहुत अधिक 'पर्यटक मित्र' मतलब 'टूरिस्ट फ्रेंडली' नहीं है। सूचनाओं का अभाव रहता है या सूचनाएँ अंग्रेज़ी में उपलब्ध नहीं होतीं। एक मुख्य कारण यह भी था कि गाइड दु-भाषिए का काम भी कर सकता है जिसकी मदद से स्थानीय लोगों से बातचीत सम्भव होगी।

बुदापैश्त से डॉ. मारिया नेज्यैशी ने कृपापूर्वक अपने एक शिष्य बोडोर लोरांद का फ़ोन नंबर दिया जो चीकसैरेदा के पास एक गाँव का रहने वाला है। बुदापैश्त में हिन्दी भी पढ़ता है और आजकल अपने गाँव आया हुआ है। उन्होंने यह भी बताया कि वह मेरा गाइड बन सकता है। एक दो दिन के बाद बोडोर लोरांद से मुलाक़ात हुई।

चीकसैरेदा में कार्यशाला के प्रतिभागियों के अलावा जिन लोगों से मुलाक़ात हुई, उनमें गाइड बॉच बेला का उल्लेख हो चुका है। बॉच बेला करीब 40-45 साल के गम्भीर व्यक्ति हैं। वे चित्रकार हैं और शायद कविताएँ भी लिखते हैं। इसके अतिरिक्त वे ट्रांसलवेनिया के विशेषज्ञ भी माने जाते हैं। चीकसैरेदा से कुछ दूर उनका गाँव है जहाँ कई एकड़ के सुन्दर कंपाउण्ड में बिलकुल किसानों जैसे घर में उनके माता-पिता रहते हैं। बिलकुल किसानों जैसा जीवन बिताते हैं। हम लोग क्लास अटैंड करने उनके घर भी गये थे जहाँ घास के एक खुले मैदान में बैठ कर पाठ पढ़ा गया था। यहाँ बॉच बेला ने अपने कुएँ का पानी भी पिलाया था जो बेहतरीन था।

बॉच बेला गर्वीले हंगेरियन हैं। वे अपने क्षेत्र ट्रांसलवेनिया और गाँव से इतना प्रेम करते हैं कि उनके मन में उसे छोड़ने का खयाल भी नहीं आता। अपनी धरती से इतना प्यार करने वाले मैंने कम ही देखे हैं। बाच बेला प्रायः अपनी धरती की उपज का ही प्रयोग पसन्द करते हैं। जो उनकी धरती में होता है वह उन्हें अधिक प्रिय है। वे इतिहास और स्थानीय संस्कृति के भी विशेषज्ञ हैं। हंगेरियन लोक संगीत और नृत्य पर भी उनका गहरा अध्ययन है। वे हम लोगों को आस-पास कई जगहों पर ले गये जो ट्रांसलवेनिया के

इतिहास में महत्त्व रखती हैं।

बॉच बेला ने ही मुझे एक विलक्षण चित्रकार मोल्दोवान ज़ोल्ट से मिलाया। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि चीकसैरेदा में किसी ऐसे चित्रकार से मुलाकात होगी। जोल्ट के सुन्दर फ़्लैट में जाकर ऐसा लगा जैसे चीकसैरेदा में भारत की एक खिड़की खुल गयी हो। ज़ोल्ट ने भारतीय महिलाओं, विशेष रूप से बंगाल की महिलाओं के बहुत से चित्र बनाये हैं जो उनके फ़्लैट की दीवारों पर भारत की एक छवि बना रहे थे।

ज़ोल्ट ने मेरी जिज्ञासा का समाधान करते हुए कहा कि वे कुछ साल पहले कलकत्ता गये थे। कलकत्ता में साड़ी पहने महिलाएँ उन्हें इतनी भली लगी थीं कि उन्होंने इन महिलाओं के दसियों चित्र बना डाले थे। वास्तव में ज़ोल्ट ने बंगाल की महिला और साड़ी के संयोजन से बहुत कलात्मक काम किया है। उनके ये चित्र देखनेवाला मैं शायद पहला भारतीय था। ज़ोल्ट से भारत के बारे में बातचीत होने लगी। उनकी इच्छा है कि वे फिर भारत आयें और दूसरे प्रदेश भी देखें। इस बातचीत के दौरान ज़ोल्ट की सुन्दर पत्नी हम लोगों की पूरी खातिरदारी कर रही थीं। ज़ोल्ट आधुनिक भारतीय कला के बारे में विस्तार से जानना चाहते थे। मुझसे जो भी हो सकता था बता रहा था। कुछ देर बाद ज़ोल्ट की पत्नी तरबूज काट कर ले आयीं। हम तरबूज खाने लगे। मैंने नमक माँगा। इस पर हंगेरियन मित्रों को आश्चर्य हुआ। लेकिन जब उन्होंने मुझे तरबूज पर नमक छिड़क कर खाते देखा तो यह प्रयोग करने से वे अपने को रोक न सके। उन्होंने जीवन में पहली बार तरबूज पर नमक डाल कर खाया। ज़ोल्ट की पत्नी के अलावा और सबको अच्छा लगा। चलते वक्त ज़ोल्ट ने मुझे अपना एक चित्र भेंट किया। मैं बहुत अच्छी यादें लेकर उनके फ़्लैट से निकला और सोचता रहा कि ज़ोल्ट को भारत कैसे बुलाया जा सकता है।

कार और ट्रेन की दौड़

गाइड बन कर मेरे साथ जाने वाले बोडोर लोरांद युवा, सजीले, कर्मठ और सहृदय युवक हैं। वे थोड़ी-थोड़ी हिन्दी भी बोल लेते हैं जो मेरे हिसाब से पर्याप्त है। बोडोर एक-दो बार चीकसैरेदा में मिल कर मेरी छोटी-मोटी दिक्कतों के समाधान में सहायक बन चुके हैं। एक दिन उनका फ़ोन आया कि वे अपने गाँव से चीकसैरेदा आ रहे हैं। और मैं उनके परिवार के साथ उनका गाँव देखने चल सकता हूँ। निर्धारित समय पर वे आ गये। उनके साथ उनके पिताजी और दादाजी भी थे। बातचीत में पता चलता उनके दादाजी की उम्र मेरे बराबर है। यह मेरे लिये शर्म की बात थी क्योंकि मैं अब तक बोडोर जैसे जवान का दादा नहीं बन पाया हूँ। यह सोच कर दुःख हुआ कि हिन्दी में एम.ए. करने की वजह से यदि मेरी शादी इतनी देर से न हुई होती तो आज मैं भी बोडोर के दादा जैसा होता। पर चिड़िया खेत चुग चुकी है।

बोडोर के गाँव का नाम जिमेश है जो सुन्दर पहाड़ों और जंगलों से घिरा है। चीकसैरेदा से यहाँ तक आने का रास्ता इतना सुन्दर था कि कश्मीर की घाटियों की याद ताज़ा हो जाती थी। कहीं-कहीं उसकी सुन्दरता अलौकिक-सी मालूम पड़ती थी। बोडोर का घर सड़क के किनारे है। सड़क की दूसरी तरफ़ रेलवे लाइन है। उसके पीछे ऊँचे पहाड़ हैं जहाँ डूबते हुए सूरज की रौशनी अपनी अन्तिम आभा बिखेरती है। बोडोर के माता-पिता अध्यापक हैं। पिताजी अंग्रेज़ी जानते हैं। वैसे बोडोर के पिताजी ने पीछे लॉन में आग सुलगा कर 'बार-बी-क्यु' यानी माँस को आग पर भून कर पकाने का कार्यक्रम शुरू कर दिया। सूरज डूबने वाला था। तय यह किया गया था कि खाना-खाने के बाद मैं वापस जाने के लिये ट्रेन पकड़ लूँगा।

बातचीत के दौरान बोडोर ने बताया कि उनके पास दो खतरनाक कुत्ते भी हैं जिन्हें वे रात में छोड़ देते हैं। कुत्ते रखवाली का काम बहुत अच्छी तरह करते हैं। मैंने पूछा कि क्या आपके गाँव में चोरियाँ बहुत होती हैं। इसके उत्तर में बोडोर ने बताया कि आस-पास रहने वाले जिप्सी गाँव में लोगों के घरों में घुस कर चोरियाँ करते हैं। जिप्सियों का ज़िक्र आते ही मैं चौंक गया कि रोमानिया ही नहीं बल्कि पूरे योरोप में जिप्सी समस्या एक बड़ी मानवीय समस्या बनी हुई है। आम तौर पर लोग मानते हैं कि जिप्सी चोर होते हैं। वे अनपढ़ और असभ्य हैं। उनके सामाजिक रीति-रिवाज़ बहुत पुराने और बर्बर होते हैं। वे योरोपीय समाज से बाहर अपना अलग समाज बनाते हैं। जिप्सियों के प्रति शिकायतें बड़ी हद तक जायज़ हैं लेकिन योरोप में जिप्सियों के साथ जो भेदभाव होता है, उससे भी इनकार नहीं किया जा सकता।

खाने की मेज़ पर बैठे और स्वादिष्ट खाना शुरू हुआ तो ट्रेन आने का समय अचानक बहुत नज़दीक आ गया। इस पर बोडोर के पिताजी ने कहा कि मैं ट्रेन छूटने की चिन्ता न करूँ। वे गाड़ी से मुझे चीकसैरेदा छोड़ देंगे। पर यह मुझे कुछ अच्छा नहीं लगा कि केवल मेरी वजह से वे पच्चीस-तीस किलोमीटर जायेंगे और फिर आयेंगे। ख़ैर खाना ख़त्म हो जाने के बाद यह लगा कि अभी ट्रेन का वक्त है और मुझे ट्रेन मिल सकती है अगर जल्दी स्टेशन पहुँच जायें। बोडोर की माँ तेज़ी से गाड़ी निकालने दौड़ीं। मैंने अपना सामान समेटा और बोडोर के साथ सड़क की तरफ़ भागा। वहाँ गाड़ी तैयार खड़ी थी। हमारे बैठते ही गाड़ी फर्राटे भरने लगी। मुझे यह अन्दाज़ा नहीं था कि बोडोर की माँ इतनी अच्छी ड्राइवर होंगी। गाड़ी सड़क पर करीब अस्सी की रफ्तार से दौड़ रही थी कि रेल की पटरी पर उससे तेज़ रफ्तार से रेलगाड़ी आती दिखाई दी। अब हमारी गाड़ी और रेलगाड़ी में प्रतियोगिता शुरू हो गयी। बोडोर की माँ ने एक्सीलेटर पर ऐसा दबाव डाला कि गाड़ी हवा से बातें करने लगी। ट्रेन और कार की यह दौड़ कुछ मिनट जारी रही। आखिर जीत हमारी हुई। मुझे ट्रेन मिल गयी।

जिप्सी : योरोप में मानवाधिकार

रोमानिया के बारे में कुछ कहा जाये और जिप्सी प्रसंग सामने न आये यह नहीं हो सकता। रोमानिया के समाज और उनकी राजनीति में जिप्सियों का मुद्दा एक प्रमुख मुद्दा माना जाता है। इतिहास बताता है कि मंगोलों के योरोप आक्रमण के समय सन् 1241 के आस-पास जिप्सी रोमानिया पहुँचे थे। 14वीं शताब्दी में जब मूगोल पूर्वी योरोप से चले गये तब जो जिप्सी रोमानिया में रह गये थे उन्हें दास बना लिया गया था। एक दस्तावेज़ के अनुसार जिस पर प्रिंस डॉन प्रथम के हस्ताक्षर हैं, जिप्सियों की पहली खेप सन् 1385 में पकड़ी गयी थी। एक तरह से रोमानिया जिप्सियों का पहला घर बन गया था, जिसके कारण आज भी जिप्सियों को कुछ देशों में 'रोमा' कहा जाता है। जिप्सियों के इस नामकरण का रोमानिया में रहने वाले विरोध भी करते हैं, क्योंकि उससे यह भ्रम उत्पन्न होता है कि जिप्सी रोमानियन हैं।

समाजशास्त्री और इतिहासकार इस बात से सहमत हैं कि जिप्सियों का मूल स्थान उत्तर भारत है। वे सिंध, पंजाब और राजस्थान के कुछ क्षेत्रों की घुमंतू जातियाँ थीं जो कई कारणों से योरोप की ओर निकल गयी थीं। जिप्सियों की भाषा में हिन्दी के बहुत से शब्द भी इसका प्रमाण हैं। अपने हंगरी प्रवास के दौरान एक बार मैं जिप्सियों के गाँव गया था। यह गाँव मुख्य आबादी से दूर बसा हुआ था। इस गाँव में मिट्टी और लकड़ी के कच्चे घर थे और किसी प्रकार की सार्वजनिक सुविधाएँ नहीं थीं। हम लोग अपने हंगेरियन जिप्सी मित्रों के साथ गाँव के जिप्सियों से बातचीत कर रहे थे। मुझे यह बताया गया था कि हिन्दी के शब्द जैसे—आँख, नाक और कान आदि जिप्सी भाषा में भी हैं। मैंने एक जिप्सी बच्चे से ये शब्द बोले तो वह बहुत उत्साहित हो गया और उसने अपने पिता से मेरे बारे में कहा कि यह आदमी हमारी भाषा बोलता है। यह पुरानी बात है लेकिन आज भी जिप्सी समस्या योरोप की एक प्रमुख समस्या बनी हुई है। जिप्सियों की दर्दनाक कथा योरोप के कई विकसित और सभ्य देशों की अस्मिता पर प्रश्न लगाती है। लोकतंत्र, मानव अधिकार, समता, न्याय, बंधुत्व आदि-आदि की पोल खुल जाती है और लगता है योरोप आज भी पक्का, जड़ और नस्लवादी है। वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रगति योरोप को नस्ल, रंग की श्रेष्ठता के विचार से मुक्त नहीं कर सकी है। 18वीं शताब्दी की बात छोड़ भी दें कि जब योरोप के कई देशों में जिप्सियों की हत्या को हत्या नहीं माना जाता था तो आज योरोप के कई देशों ने जिप्सियों को अपनी नागरिकता से वंचित कर दिया है। आज भी योरोपीय जिप्सी अशिक्षा, अपराध और अज्ञान के अँधेरे में डूबे हुए हैं। विचारणीय यह है कि समाजवादी सरकारों ने भी कागज़ी कार्यवाही के अतिरिक्त जिप्सियों के उत्थान के लिये कोई ठोस काम नहीं किये थे। जबकि योरोप की तुलना में अमेरिका और कनाडा पिछड़े अल्पसंख्यक समूहों के प्रति अधिक संवेदनशील हैं जबकि नागरिकता और मानव अधिकारों से वंचित योरोपीय जिप्सी गरीबी, अशिक्षा और पस्तहाली में आम तौर पर

‘गोरों’ के नगरों से दूर मध्यकालीन बस्तियों में रहते हैं।

रोमानिया में सन् 1856 में गुलाम प्रथा समाप्त हो जाने के बाद जिप्सी आज़ाद हो गये थे और वे आबादी का लगभग 2 प्रतिशत थे। उनकी हालत हर तरह से दयनीय थी। अपने पारम्परिक पेशों जैसे लोहारी के अतिरिक्त वे जानवरों को बेचने और खरीदने का काम किया करते थे। अशिक्षा, अज्ञान और गरीबी के कारण वे चोरी भी किया करते थे। यही कारण है कि चोरी शब्द भी मध्य योरोप की बहुत-सी भाषाओं में प्रचलित हो गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रोमानिया की दक्षिण पंथी सरकार ने जिप्सियों को नाज़ियों के हवाले कर दिया था। नाज़ियों ने अपनी नस्ली श्रेष्ठता और अन्य जातियों के प्रति बर्बरता के अन्तर्गत जिप्सियों को भी यहूदियों की तरह गैस चैम्बरों में डालकर मार डाला था। लगभग 36 हज़ार जिप्सियों की हत्या कर दी गयी थी।

इक्कीसवीं शताब्दी में भी रोमानिया के जिप्सियों की स्थिति बहुत चिन्ताजनक है। नस्लवाद और रंगवाद के कारण न केवल उनकी उपेक्षा होती है बल्कि उन्हें तरह-तरह से प्रताड़ित किया जाता है। सन् 2000 में दी गयी योरोपियन यूनियन की एक रिपोर्ट के अनुसार...हर स्तर पर रोमानिया में जिप्सियों के प्रति भेदभाव जारी है जो बहुत चिन्ता का विषय है...उन्हें शिक्षा देने के उद्देश्य से बनाये गये कार्यक्रमों की प्रगति बहुत धीमी है।

दु:ख की बात यह है कि वे जिप्सी जो किसी प्रकार से पढ़-लिख गये हैं। सरकारी नौकरियों में आ गये हैं, लेखक, प्रोफ़ेसर, डॉक्टर आदि बन गये हैं। वे भी इस तथ्य को छिपाते हैं कि वे जिप्सी मूल के हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि रोमानिया के समाज में जिप्सियों को लेकर बहुत आपत्तिजनक मान्यताएँ स्थापित कर दी गयी हैं। रोमानिया के समाज में नस्लवाद और जिप्सियों के प्रति घृणा प्रचार बहुत बढ़ गया है, जबकि इससे पहले समाजवादी दौर में यह बहुत कम या छिपा हुआ था। जिप्सियों के प्रति घृणा प्रचार मास मीडिया द्वारा भी किया जाता है। उन पर हिंसक हमले किये जाते हैं। जिनको उचित ठहराने के लिये तरह-तरह की दलीलें पेश की जाती हैं। वर्तमान रोमानिया की सरकार जिप्सी समस्या को अपनी असफलताएँ छिपाने का माध्यम बनाती है। भ्रष्टाचार, धोखाधड़ी, बेरोज़गारी आदि समस्याओं से लोगों का ध्यान हटाने के लिये जिप्सी समस्या को बढ़ा-चढ़ा कर पेश किया जाता है। कम्युनिस्ट युग समाप्त होने के बाद रोमानिया में जो सरकार बनी थी उसने जिप्सियों पर यह आरोप लगाया था कि जिप्सी उसके खिलाफ़ हैं।

रोमानिया में जिप्सियों के विरुद्ध किये जाने वाले प्रचार का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि रोमानिया के समाचार-पत्रों में ऐसे समाचार प्रमुखता से छपे थे जिनमें यह कहा गया था कि तानाशाह चाउशेस्कू और उसकी पत्नी जिप्सी मूल के लोग थे। यह आरोप प्रमाणित नहीं हो सका था लेकिन इससे यह तो प्रमाणित हो ही जाता है कि रोमानिया में जिप्सियों के प्रति कितना ‘होस्टाइल’ (विरोधी) वातावरण है। जिप्सियों को समाज से अलग और दूर रखने की बात की जा रही है। उन्हें हर तरह के बुरे कामों का ज़िम्मेदार ठहराया जाता है।

एक लालच मेरे मन में आया कि इन दो या कम-से-कम रोमानी-हंगेरियन विवाद को इस यात्रा के दौरान समझने का प्रयास किया जाये। दरअसल इस इलाके को उस समय तक समझा ही नहीं जा सकता जब तक हमें नृजातीय विवाद की जानकारी न हो। यह जग ज़ाहिर तथ्य है कि इन दो समुदायों के बीच गम्भीर विवाद है।

मैंने इस विवाद को समझने के लिये बोडोर का सहारा लिया। सिद्धांत है कि किताबों से अधिक जानकारियाँ लोगों के पास होती हैं।

कहा जाता है आप ट्रांसलवेनिया के इतिहास के बारे में अगर किसी हंगेरियन और किसी रोमानी से बात करें तो पता चलेगा कि ट्रांसलवेनिया के दो इतिहास हैं। दोनों अपने-अपने पक्ष रखते हैं। इतिहास को तोड़ा-मरोड़ा जाता है ताकि अपने को सही सिद्ध किया जा सके।

एक समय था जब राष्ट्रीयता नाम की कोई चीज़ न थी। उस (1687-1918) समय साम्राज्य थे। नृजातीय समूह थे। उस समय ट्रांसलवेनिया हंगेरियन साम्राज्य (1000-1526) और उसके बाद हब्सबर्ग साम्राज्य का हिस्सा था, जहाँ हंगेरियन कुलीन और सामंत थे। रोमानी लोग बहुमत में होने के बावजूद दास या खेतिहर मज़दूर थे। निश्चित रूप से दास और सामंत में जो अन्तर होता है, वह अन्तर वहाँ भी था जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में झलकता था। दूसरी तरफ़ ट्रांसलवेनिया हंगरी के साहित्य, कला, संस्कृति, शिक्षा और जागरूकता का पर्याय बन चुका था। हंगेरियन ट्रांसलवेनिया पर गर्व करते थे।

पहला विश्वयुद्ध शुरू होने से पहले योरोप में राष्ट्रीयताएँ बन चुकी थीं। ट्रांसलवेनिया के रोमानी अपने को रोमानिया का हिस्सा मानने लगे थे जबकि ट्रांसलवेनिया के हंगेरियन अपने को हंगरी का अभिन्न अंग मानते थे। पहले विश्वयुद्ध में रोमानिया ने इस शर्त पर संयुक्त सेनाओं, फ्रांस, ब्रिटेन और रूस—को समर्थन दिया था कि विजय होने पर ट्रांसलवेनिया और हंगरी का एक हिस्सा रोमानिया को दे दिया जायेगा। इस युद्ध में हंगरी विरोधी देशों के साथ था। पहले विश्वयुद्ध में हंगेरियन पक्ष अर्थात् इब्सबर्ग साम्राज्य की हार हो गयी और ट्रिअनॉन संधि (1920) के अनुसार ट्रांसलवेनिया पूर्वी हंगरी का बड़ा भाग रोमानिया को दे दिया गया।

लगभग पिछले सौ साल से ट्रांसलवेनिया में ट्रांसलवेनिया और रोमानी प्रभुत्व की लड़ाई लड़ रहे हैं। चूँकि सत्ता रोमानी लोगों के पास है इसलिए उनकी नीतियाँ अधिक कारगर साबित हो रही हैं। क्षेत्र में हंगेरियन जनसंख्या कम हो रही है और रोमानी लोग बढ़ रहे हैं। कल्पना की गयी थी कि शायद योरोपियन यूनियन से इस समस्या का समाधान होगा पर अब तक तो ऐसा दिखाई नहीं पड़ता।

मारामारोश में हंगेरियन उतने नहीं हैं जितने ट्रांसलवेनिया में हैं, लेकिन फिर भी मारामारोश के कुछ शहरों में उनकी उपस्थिति है।

शुर देश्त्या

मारामारोश में हमारा पहला पड़ाव बयामारे था। चीकसैरेदा से सीधी ट्रेन बयामारे जाती है। पूरी रात का सफ़र है। सोचा यह था कि दो सोने की सीटें (स्लीपर) रिज़र्व करा लेंगे और रात भर आराम से सोते हुए सुबह बयामारे पहुँच जायेंगे। लेकिन कुछ नासमझी हो गयी। हम शाम को जब टिकट लेने गये तो पता चला स्लीपर के टिकट दोपहर तक ही मिलते हैं। अब सिर्फ़ बैठने वाले टिकट मिल सकते हैं। रातभर बैठे-बैठे यात्रा करने की बात सुनकर ही जान निकल गयी। लेकिन मरते क्या न करते वाली स्थिति थी।

रोमानिया की राजधानी बुखारेस्ट से लगभग 600 किलोमीटर दूर यूक्रेन की सीमा के निकट बयामारे कभी सोने, चाँदी की खानों के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ टकसाल भी हुआ करती थी। लेकिन अब यह सब इतिहास बन चुका है जो बयामारे के संग्रहालय में देखा जा सकता है।

हॉस्टलनुमा होटल में सामान वग़ैरा रख कर हम बयामारे की सैर करने निकले। यह शहर चीकसैरेदा से बड़ा और अधिक सम्पन्न लगा। यहाँ का रेलवे स्टेशन भी चीकसैरेदा के स्टेशन की तुलना में बड़ा और नया बना हुआ था। शहर की सम्पन्नता और सरकार द्वारा अधिक ध्यान देने का रहस्य यह है कि बयामारे रोमानिया के उन हिस्सों में गिना जाता है जहाँ रोमानी लोगों का बहुमत है जबकि चीकसैरेदा में हंगेरियन मूल के रोमानी लोगों का बहुमत है। बात समझ में आ गयी। अपने लोग और पराये लोग। यह अन्तर दूसरे देशों में देखा जा सकता है। ईरान के उन इलाकों पर सरकार अधिक ध्यान देती है, पैसा खर्च करती है जहाँ ईरानी नस्ल के लोग रहते हैं। जबकि उन इलाकों की कुछ उपेक्षा सी होती है जहाँ ग़ैर ईरानी नस्ल के लोग बसते हैं। रोमानिया में रोमन और हंगेरियन मूल के निवासियों के बीच काफ़ी तनाव की स्थिति है।

बयामारे भी नये और पुराने शहर के हिस्सों में बँटा हुआ है। पुराना हिस्सा मध्यकालीन योरोप के शहरों जैसा है और नया हिस्सा समाजवादी स्थापत्य कला से प्रभावित है। बयामारे के पास ही शुर देश्त्या नामक गाँव है जहाँ दुनिया का दूसरा सबसे ऊँचा लकड़ी का चर्च है। अपने गाइड बोडोर के नेतृत्व में, मैं जहाँ बस से उतरा था वह गाँव का चौराहा जैसी जगह थी। रोमानिया के गाँव भारत के गाँवों से नितान्त भिन्न होते हैं। सीधी सड़कों के इधर-उधर लोहे की जाली के अहाते या लकड़ी की दीवार से बनाये गये कंपाउण्ड के अन्दर घर होता है। सामने और पीछे काफ़ी जगह होती है जहाँ आम तौर पर फलों के पेड़ और मौसम की सब्ज़ियाँ लगाई जाती हैं। गाँव प्रायः आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न होते हैं। प्रत्येक गाँव में एक चर्च, एक छोटा बाज़ार या बड़ी दुकान के साथ 'बार' होता है।

गाँव के चौराहे पर बताया गया कि शुर देश्त्या गाँव के लिये हमें कुछ किलोमीटर

पैदल चलना पड़ेगा क्योंकि वहाँ तक कोई बस नहीं जाती या बस का समय नहीं है। एक पतली बलखाती सड़क पर हमने चलना शुरू कर दिया। इधर-उधर के मकानों के अहाते में अंगूर की बेलों पर अंगूर लदे हुए थे। पेड़ों पर नाशपाती और आलू बुखारे इस क़दर फले थे कि फल ही फल दिखाई पड़ते थे। अहाते के किनारे जो फलों के पेड़ लगे थे उनकी डालियाँ सड़क तक आ रही थीं और कहीं-कहीं सड़कों पर कच्चे-पक्के सेब बिखरे पड़े थे। कभी-कभी हम कोई अच्छा फल उठा लेते थे और खाते हुए आगे चल पड़ते थे।

मौसम सुहावना होने की वजह से पैदल चलना खल नहीं रहा था। इधर-उधर बने घरों के अहाते में काम करती औरतें हमें देखकर पहचान रही थीं कि हम बाहर के लोग हैं। सड़क पर इक्का-दुक्का कार निकल जाती थी। घोड़ागाड़ियाँ भी आती-जाती दिखाई दे रही थीं। हमें चलते-चलते करीब एक घंटा हो गया और शुर देश्त्या का कहीं पता न था।

एक जगह रोमानी भाषा में कुछ लिखा था जिसे देखकर बोडोर ने बायीं तरफ़ मुड़ने का संकेत दिया। हम ढलान पर उतरने लगे। यहीं शुर देश्त्या गाँव था। लकड़ी के कुछ पुराने मकान गाँव के प्राचीन होने की कहानी सुना रहे थे। विशाल पेड़ और इधर-उधर फैली झाड़ियाँ और उन पर छायी लताएँ हरियाली का एक अद्भुत नज़ारा पेश कर रही थीं। हम गाँव से गुज़रते आगे बढ़ने लगे। विशाल हरे पेड़ों के पीछे हमें लकड़ी से बने संसार के दूसरे सबसे ऊँचे चर्च की झलकियाँ मिलने लगीं। 54 मीटर ऊँचा यह चर्च 1721 में बनाया गया था। 1990 के बाद यह दूसरे नंबर पर पहुँच गया क्योंकि मारामारोश के बरसाना इलाके में लकड़ी का एक 62 मीटर ऊँचा चर्च बना दिया गया था। पर मानने वाले शुर देश्त्या में बने चर्च को ही पहला लकड़ी का बना सबसे ऊँचा चर्च मानते हैं क्योंकि 1721 और 1990 में काफ़ी फ़र्क़ है। टेक्नॉलाजी में ही नहीं भावना में भी फ़र्क़ आ गया है। शुर देश्त्या का चर्च जिस भावना से बनाया गया था, वह 1990 में कहाँ थी?

हम चर्च कंपाउण्ड के छोटे दरवाज़े तक पहुँच गये। कंपाउण्ड की दीवार भी लकड़ी की थी जो सैकड़ों साल के मौसमों की मार खाते-खाते काली पड़ गयी थी। काली लकड़ी की दीवार के ऊपर कहीं-कहीं हरी काई जम गयी थी जो एक अजीब-सी विसंगति का एहसास कराती थी। मृत्यु पर जीवन या जीवन और मृत्यु का समावेश या काले पर हरे का पुट और हरे का काले के ऊपर होना आदि-आदि।

चर्च का दरवाज़ा बन्द था लेकिन चाबी कहाँ मिलेगी यह जानकारी एक तख्ती पर लिखी हुई थी। बोडोर दी गयी जानकारी के अनुसार सम्बन्धित व्यक्ति को बुलाने चले गये। मैं चर्च की तस्वीरें लेने लगा। कुछ देर बाद बोडोर एक लड़की के साथ आये। उसने दरवाज़ा खोला। हम अन्दर गये। यहाँ मैंने देखा कि बोडोर ने धार्मिक व्यक्तियों की तरह चर्च या धर्म के प्रति अपनी आस्था प्रगट की। चूँकि मैं धर्म प्रधान देश का रहने वाला हूँ और धर्म के मर्म को समझता हूँ इसलिए मैंने उनकी श्रद्धा का स्वागत किया। चर्च की लकड़ी का रंग भी काला पड़ चुका है। चौकोर बना चर्च ऊपर जाते-जाते तिकोना हो जाता है। लकड़ी के पतले बरामदे और उसके बाद बने मुख्य दरवाज़े से हम अन्दर गये। अन्दर आते ही मैंने कैमरा ऑन कर दिया। फ्लैश चमकी तो लड़की ने कुछ कहा। बोडोर

ने बताया अन्दर चित्र लेना मना है। मैंने कैमरा बन्द कर दिया। अन्दर की सजावट, लकड़ी पर बने ईसा मसीह के जीवन से सम्बन्धित चित्र लोक कला की आस्था दर्शा रहे थे। बताया गया कि चर्च में हर रविवार प्रार्थना होती है। चर्च के एक कोने में दानपात्र रखा था। बोडोर ने मेरे खयाल से दान पात्र में डालने के लिये एक बड़ा नोट निकाला। मैंने अपनी आस्था के अनुसार छोटा नोट दानपात्र में डाला। यहीं चर्च संबंधी साहित्य और पिक्चर पोस्टर कार्ड 'सेल' के लिये रखे थे। इनमें चर्च के अन्दर के चित्र भी थे। इन्हें देखकर मैं समझा कि चर्च के अन्दर फ़ोटो खींचना क्यों वर्जित है।

मिच का स्वाद

हमारा अगला पड़ाव ओकना शुगाताग था। यहाँ हम लकड़ी के पुराने घर और फाटक देखने आये थे। मारामारोश में चूँकि पब्लिक ट्रांसपोर्ट बहुत अच्छा नहीं है, इसलिए यात्रा करने का तरीका 'हिचहाइकिंग' है। मतलब अपनी दिशा में जाती गाड़ियों को रुकवाना और उन पर सवारी करना। यहाँ 'हिचहाइक' फ्री नहीं होती। पैसे देने पड़ते हैं। बस का घंटों इंतज़ार करने और निराश लौट जाने से यह बेहतर है।

हम 'हिचहाइक' करते हुए ओकना शुगाताग पहुँचे थे। आस-पास घूमने के बाद और पुरानी खदानों में तलाबों को देखकर हम एक किसान बाज़ार में चले गये थे। खुली जगह पर किसान अपने खेतों और बाग़ों की उपज और घर में बनाये मक्खन-पनीर आदि को बेच रहे थे। यहाँ मुझे गाँव में बनाया गया नमकीन पनीर मिल गया जिसकी मुझे बहुत दिनों से तलाश थी और जो मैंने बरसों पहले बुखारेस्ट में ज़ैतून और 'रेड वाइन' के साथ खाया था।

बहुत छोटा-सा गाँव हमने कुछ ही घंटों में घूम लिया। किसानों का बाज़ार भी देख लिया। शाम को बाज़ार के एक रेस्टोरेंट में कॉफ़ी पीते हुए यह सोचा कि रात का खाना किसी ऐसे रेस्टोरेंट में खाया जाये जहाँ पक्का रोमानी खाना मिलता हो। बोडोर ने रेस्टोरेंट का नाम-पता लगा लिया जो गाँव के एक कोने में था।

रेस्तराँ में बोडोर ने बताया कि यहाँ 'मिच' नामक रोमानी सॉसेज मिल सकता है, जो एक प्रिय भोजन है। इसमें कुछ तेज़ी भी होती है। मतलब लाल मिच भी डाली जाती है। मैं 'मिच' खाने पर तैयार हो गया। इसके अलावा हमने पतसल सूप मँगवाया। सूप के साथ ब्रेड देना तो आवश्यक है ही। 'मिच' खाया तो मज़ा आ गया। बिलकुल मज़ेदार सीक कबाब जैसा स्वाद; लेकिन उससे कुछ अलग भी था। एक प्लेट मिच खाने के बाद फिर 'मिच' मँगाया। सोचा, "अब पता नहीं कब, कहाँ, कैसे 'मिच' खाने को मिलेगा भी या नहीं।"

सुबह फिर हमारी 'हिचहाइकिंग' शुरू हो गयी। हमारी अगली मंज़िल सिगैतु मार मासि्ए कस्बा था जो बिलकुल यूक्रेन की सीमा पर बसा हुआ है। कभी यह बहुत बड़ा शहर हुआ करता था जो आस-पास के देशों के व्यापार का केन्द्र था। आज उतना बड़ा और सम्पन्न नहीं है लेकिन फिर भी बड़ा कस्बा है। हम सिगैतु की सड़कें नापते रहे। भरा-पूरा और काफ़ी 'बिजनेस लाइफ' शहर लगा। यहाँ थोड़ी-सी हंगेरियन आबादी भी है। कमाल की बात यह थी कि बोडोर देखकर ही पहचान लेते थे कि कौन हंगेरियन है और कौन रोमानी है, जबकि दोनों की सूरतों में मुझे तो कोई खास फ़र्क़ नज़र नहीं आता था। अगर कहीं कोई जानकारी लेनी होती थी तो बोडोर किसी हंगेरियन से पूछना बेहतर समझते थे।

घूमते-घूमते हम लोग उस इलाके में निकल आये जो 'ज्यूइश क्वाटर' यानी यहूदी लोगों का इलाका कहा जाता है। 17वीं शताब्दी में रूस से यहूदियों का इस इलाके में आना शुरू हुआ था। नमक और लकड़ी के फ़ायदेमंद व्यापार के लिए यहूदी यहाँ लगातार आते रहे। 19वीं शताब्दी में उनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी थी कि वे कुल आबादी का 45% थे। यहूदी जहाँ जाते हैं, अपना धर्म, संस्कृति और भाषा लेकर जाते हैं और उसे संजोकर रखते हैं। यहाँ आये यहूदियों ने भी यही किया था। सीमा यह है कि उनके मकानों के स्थापत्य का भी एक मानक है। यह कितने आश्चर्य की बात है। मैंने आज़रवाइजान के गूबा शहर में यहूदियों के मोहल्ले और मकानों का जो स्थापत्य देखा था, वही यहाँ भी नज़र आया। लेकिन दु:ख की बात है कि दूसरे विश्वयुद्ध के बाद नाज़ियों की यहूदी विरोधी नीतियों और बाद में इज़राइल बन जाने के कारण अब यहाँ मात्र सौ यहूदी परिवार बचे हैं। कभी यहाँ छः सिनेगाग (यहूदी पूजा गृह) हुआ करते थे। आज केवल एक है। इस सबके बावजूद हैरत की बात यह है कि यहूदी इलाके के खाली घर भी लिपे-पुते, साफ़-सुथरे और रख-रखाव के कारण अच्छी हालत में हैं।

शहर के सिनेगाग की दीवार पर एक नोटिस जैसा लगा था। मैंने बोडोर से कहा कि नोटिस पढ़कर बताओ कि वह क्या है। नोटिस में स्थानीय लोगों से अपील की गयी थी कि वे सिनेगाग को नुकसान न पहुँचायें। यह भी कहा गया था कि यहूदी समुदाय ने समय-समय पर स्थानीय लोगों की सहायता की है और आगे भी करता रहेगा।

यह जानकारी यह प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त थी कि इलाके में अब भी यहूदियों के ख़िलाफ़ कुछ लोग हैं। यह भी इस इलाके का एक पुराना अन्तर्द्वंद्व है। रोमानी और हंगेरियन लोगों के बीच तो वैसे ही बहुत से विवाद और एक-दूसरे के प्रति शिकायत है।

इसी ज्यूइश क्वाटर में प्रसिद्ध लेखक एली विशेल (Elie Wiesel) का जन्म हुआ था। वह मकान आज भी देखा जा सकता है। प्रसिद्ध पुस्त नाइट के लेखक एली विशेल को 1986 में नोबेल शांति पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। एली द्वितीय विश्वयुद्ध के समय बालक थे। उन्हें उनके परिवार के साथ यातना शिविर (कंसन्ट्रेशन कैंप) में जाना पड़ा था। नाइट पुस्तक एक बालक के यातना शिविर में हुए अनुभवों का बड़ा प्रामाणिक और मार्मिक दस्तावेज़ है। लेखक और इलाके के यहूदी समुदाय के बारे में लगी एक प्रदर्शनी भी हम लोग देखने गये थे पर पूरी तरह देख नहीं पाये थे।

प्रचार के आयाम

सिगैतु में एक और महत्त्वपूर्ण संग्रहालय है। रोमानिया की सबसे कुख्यात जेल यहीं है, जिसे मंत्रियों की जेल के नाम से भी जाना जाता है। आश्चर्य की बात है कि यह जेल बीच शहर और बीच बाज़ार में है। यह मेरे लिये एक नयी बात थी क्योंकि मैंने आम तौर पर जेलें (बाहर से) शहर के बाहर देखी थीं। बताया जाता है कि इस जेल में देश के बड़े विरोधी दलों के नेता, पादरी, वैज्ञानिक, शिक्षाविद् आदि कम्युनिस्ट तानाशाही के दौरान रखे गये थे। जेल संग्रहालय का टिकट लेकर हम लोग अन्दर आ गये। यह जेल जैसी इमारत लगी भी नहीं। तीन मंज़िला इस इमारत में एक बीच का आँगन था और चारों तरफ़ छोटे-बड़े कमरे थे। इन कमरों में कैदियों के कपड़े, बर्तन, बिस्तर आदि रखे हुए थे। दीवारों पर कैदियों की तस्वीरें और दूसरे विवरण लिखे थे। जेल के आकार को देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि उसमें जितने बताये जाते हैं उतने कैदी कैसे रखे गये होंगे।

धीरे-धीरे जैसे-जैसे हम लोग आगे बढ़ते गये संग्रहालय का स्वरूप बदलता गया। अब यह दर्शाया जा रहा था कि मध्य और पूर्वी योरोप के देशों में कम्युनिस्ट विरोधी आंदोलन कैसे चला था? उसके नायक कौन थे? उन नायकों के बड़े-बड़े चित्र लगे थे। यह सब देखते और आगे बढ़े तो संग्रहालय 1989 के दौरान पूर्वी और मध्य योरोप में चले कम्युनिस्ट शासन विरोधी आंदोलन पर केन्द्रित हो गया। इस संदर्भ में कम्युनिस्ट सरकारों के अत्याचार उनका अमानवीय स्वरूप, अभिव्यक्ति पर पाबन्दी, ज़बरन मज़दूरी आदि समस्याओं पर सामग्री मिलने लगी। देखते-ही-देखते जेल के जीवन और कैदियों पर केन्द्रित संग्रहालय कम्युनिस्ट विरोध के इतिहास का ही नहीं कम्युनिस्ट विचारधारा विरोध का भी संग्रहालय बन गया।

बने रहने की लालसा

सपुनसा जाने के लिये हम अपना सामान लिये सड़क के किनारे खड़े गाड़ियों को लिफ्ट देने का संकेत कर रहे थे। काफ़ी देर इंतज़ार करने के बाद एक गाड़ी आकर रुकी और लोरांद ने फौरन जाकर ड्राइवर से बातचीत शुरू की। मेरे खयाल से किराया वगैरह तय किया होगा। सब कुछ तय हो जाने के बाद हम उस गाड़ी में बैठ गये और गाड़ी आगे बढ़ी। यह पुराने ज़माने की 'लाडा' कहलाये जाने वाली कार थी। सोवियत यूनियन के ज़माने में यह कार पूरे सोवियत देशों की मनपसन्द गाड़ी थी जो रूस में बनाई जाती थी। इसके अलावा दूसरी गाड़ियाँ भी थीं जिनमें 'तरबंत' नाम की एक गाड़ी काफ़ी रोचक मानी जा सकती है। यह गाड़ी बहुत सस्ती हुआ करती थी, क्योंकि इसकी बॉडी गत्ते की होती थी। इसमें स्कूटर का इंजन लगा होता था। लेकिन फिर भी यह चार सीटर कार बहुत मज़े में चलती थी। सोवियत समय में बनी चीज़ें सुन्दर नहीं बल्कि टिकाऊ और सस्ती हुआ करती थीं। सोवियत संघ खत्म हो जाने के बाद तरबन्त कार बनाने वाली कम्पनी को किसी बड़ी कार कम्पनी ने खरीद लिया था और तरबन्त कार बनानी बन्द कर दी थी।

लोरांद और गाड़ी चलाने वाले सज्जन के बीच रोमानी भाषा में बातचीत हो रही थी। अचानक लोरांद ने मुझसे पूछा कि यह सज्जन पूछ रहे हैं कि क्या कभी मैं सेना में था? मैंने कहा, "मैं कभी सेना में नहीं था। और यह सज्जन ऐसा अनुमान क्यों लगा रहे हैं?" लोरांद ने बताया कि मेरी पैंट उस रंग की है जिस रंग के कपड़े यहाँ सिपाहियों के होते हैं।

हम गाड़ी से गाँव शुरू होते ही उतर गये। सड़क के किनारे एक स्टोर था जो बिलकुल गाँव जैसा स्टोर लग रहा था। हम लोगों ने चूँकि नाश्ता नहीं किया था, इसलिए सोचा कि स्टोर से कुछ खरीद लेते हैं और कहीं बैठकर खा लेंगे। लोरांद ने स्टोरवाले से पूछा कि हम कहाँ बैठकर खा सकते हैं तो उसने कहा कि सामने वाले मकान में चले जाओ। यह बात मेरी समझ में नहीं आयी कि हम अजनबी किसी भी मकान के अन्दर जा कर कैसे यह कह सकते हैं कि हम आपके यहाँ बैठकर खाना खायेंगे। लेकिन लोरांद आगे बढ़ गया। छोटा-सा गेट खोलकर हम दोनों मकान के अहाते में आ गये। यह पक्का किसान का घर लग रहा था। हमारे अन्दर आते ही एक बूढ़ी औरत काले कपड़े पहने और सिर पर स्कार्फ बाँधे सामने आ गयी। उसे जब पता चला कि हम लोगों ने नाश्ता नहीं किया और हम उसके घर में बैठ कर नाश्ता करने की अनुमति माँग रहे हैं उसने हमें टिन के एक बड़े शेड बैठने का इशारा किया। यहाँ एक छोटी मेज़ और दो-तीन कुर्सियों के अलावा खेती किसानी में आने वाला सामान भरा पड़ा था। हम नाश्ता करने लगे। कुछ ही देर में बूढ़ी औरत अपने घर से हमारे लिये नाश्ता लेकर आ गयी। मैं हैरान हो गया लेकिन लोरांद ने बताया कि यहाँ यही परम्परा है। बूढ़ी औरत आग्रह करने लगी कि हम अपना

नाश्ता पैक कर लें और उसका लाया हुआ नाश्ता करें।

सपुनसा में एक विश्व प्रसिद्ध कब्रिस्तान है। इसे 'मेरी सिमेट्री' कहा जाता है। 1930 के आस-पास गाँव के चित्रकार स्टन लोन पेट्राश के मन में विचार आया था कि गाँव की सिमेट्री में कब्रों पर लगे क्रॉस पर फूल-पत्ते वाली सजावट करने के साथ-साथ क्यों न मृत व्यक्ति का चित्र भी बना दिया जाये। उन्होंने यह काम शुरू कर दिया जो गाँववालों को पसन्द आया। गाँव का कब्रिस्तान न केवल सुन्दर हो गया बल्कि एक पिक्चर गैलरी भी बन गयी। पेट्राश यह काम बड़ी श्रद्धा और निष्ठा से करते रहे। फिर उन्हें ध्यान आया कि मरने वाले का चित्र इस रूप में बनाना चाहिए कि उसके पेशे का पता भी लग जाये। यह काम कठिन था लेकिन चित्रकार ने उसे चुनौती के तौर पर स्वीकार किया। 'मेरी सिमेट्री' की कब्रों पर लगे क्रॉसों में अब आप किसी औरत को घर की रसोई में काम करते देख सकते हैं। यह कोई 'हाउस वाइफ़' रही होगी, जिसे चित्रकार ने उसकी जीवन में जो भूमिका थी उसके अनुसार चित्रित किया है। किसी क्रॉस पर आप डॉक्टर के कपड़े पहने एक आदमी को खड़ा देख सकते हैं। किसी अन्य क्रॉस पर फल तोड़ता और उन्हें टोकरी में रखता व्यक्ति चित्रित किया गया है। इन रंगीन चित्रों ने पूरे कब्रिस्तान को एक नया स्वरूप दे दिया है।

चित्रकार पेट्राश यहाँ रुके नहीं। उनके मन में विचार आया कि कब्रों के ऊपर लगे क्रॉस में मरने वाले व्यक्ति का काम नहीं बल्कि उसकी मौत का कारण चित्रित किया जाना चाहिए। इसलिए एक चित्र में हम देखते हैं कि कोई युवती कार के सामने आ गयी है और उसका 'एक्सीडेंट' हो गया है। किसी व्यक्ति को गोली मारी गयी है। कोई किसी दूसरा दुर्घटना में मरा है।

चित्रकार पूरा जीवन कब्रिस्तान में अपनी कला का प्रदर्शन करते रहे और 1970 में जब वे मरे तो उनके शिष्यों ने उनकी कब्र पर उनकी तस्वीर बनाई है। गाँव के साधारण चित्रकार ने एक ऐसा काम कर दिया है जो विश्वभर के पर्यटकों को इस गाँव में लाता है। निश्चय ही इसका प्रभाव गाँव की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा है। गाँव में पर्यटक आते हैं तो एक-आध दिन ठहरते हैं, खाते-पीते हैं, सामान खरीदते हैं।

पेट्राश की चित्रकला लोक शैली की कला है। उसमें तकनीक भावना प्रधान है। रंगों का संयोजन बहुत स्वाभाविक है। उनके चित्र सीधा संवाद करते हैं। उनकी सहजता और सरलता तत्काल आकर्षित करती है। उनका समाजशास्त्रीय महत्त्व भी है। गाँव का जीवन, ग्रामीण संबंध, गाँव की स्थितियाँ, विभिन्न समुदायों के पारस्परिक संबंध और कार्य व्यापार चित्रित हुए हैं। सादगी और सच्चाई ने इन चित्रों के अन्दर लोक शैली वाला प्रभाव उत्पन्न किया है।

‘लॉग ट्रेन’

विशयद सुस मारामारोश जाने वालों के लिये एक रोचक कस्बा है। जंगल के किनारे बसे इस पुराने कस्बे में लकड़ी का व्यापार होता है। हमने सपुनसा से विशयद सुस के लिये बस पकड़ी थी और हरी घाटियों, जंगलों और पहाड़ों से गुज़रते शाम होते-होते विशयद सुस पहुँचे थे। लम्बी यात्रा के बाद एक रेस्तराँ में बैठे कॉफ़ी पी रहे थे और लोगों से किसी अच्छे, सस्ते होटल का पता पूछ रहे थे। एक आदमी ने बताया कि कस्बे से पाँच-छः किलोमीटर दूर एक होटल में कमरा मिल सकता है। हम इतनी दूर नहीं जाना चाहते थे।

इसलिए पीठ पर अपना सामान लाद कर खुद किसी होटल की तलाश में निकले। तीन-चार होटल देख डाले कहीं जगह नहीं मिली। अचानक बोडोर ने एक हंगेरियन होटल का बोर्ड पढ़ा और खुश हो गया। उसने कहा कि हमें सीधे हंगेरियन होटल ही चलना चाहिए। हम उस दिशा में चल दिये। सड़क के एक मोड़ पर तीर का निशान बनाकर होटल की दिशा बताई गयी थी। उधर चल निकले। तीर का यह निशान हमें कई बार मिला। पीठ पर सामान लादे हम करीब-करीब दो-तीन किलोमीटर चल कर हंगेरियन होटल में पहुँचे तो पता चला वहाँ भी जगह नहीं है। अब कम-से-कम मेरी हिम्मत जवाब दे गयी थी। हमने टैक्सी मँगवाई। टैक्सीवाले ने एक होटल में पहुँचाया। लेकिन होटल में सिर्फ़ सिंगल बेडरूम का एक ही कमरा खाली था। मजबूरी में हमें वही लेना पड़ा। बोडोर ज़ोर डालने लगा कि मैं बिस्तर पर लेटूँ और वह नीचे कालीन पर लेट जायेगा। पर मैंने ऐसा नहीं होने दिया क्योंकि मुझे बैड से ज़्यादा अच्छी नींद नीचे आती है। होटल की इस मारा-मारी की वजह यह थी कि यह शनिवार का दिन था।

विशयद सुस का सबसे बड़ा आकर्षण ‘लॉग ट्रेन’ है। यह ट्रेन ‘स्मालगेज’ यानी छोटी लाइन से भी छोटी लाइन वाली ट्रेन है जो जंगल से लकड़ी लाने के लिये बनाई गयी थी। यह रेलवे लाइन चालीस किलोमीटर जंगल के अन्दर चली जाती है। धीरे-धीरे इसके प्रति पर्यटक आकर्षित होते गये। लकड़ी काटने और बेचने वाली कम्पनी पर्यटन उद्योग में आ गयी। अब इन ट्रेनों में लकड़ी से ज़्यादा पर्यटक यात्रा करते हैं।

अगले दिन सुबह ही सुबह हम लोग ट्रेन के स्टेशन पहुँच गये। किसी ने बताया था कि अक्सर छुट्टी के दिन ट्रेन में जगह नहीं मिलती। लॉग ट्रेन के स्टेशन पर कई ट्रेनें खड़ी थीं। कुछ में लकड़ी लदी थी और कुछ में पर्यटक बैठे थे। यह कुछ उसी तरह की ट्रेन है, जैसी कालका से शिमला जाती है। लेकिन यह दोनों तरफ़ से खुली हुई थी ताकि बाहर का नज़ारा अच्छा दिखाई दे। ट्रेन के इंजन भाप वाले इंजन थे। शायद योरोप में इसके अलावा और कहीं अब भाप वाले इंजन नहीं चलते। ट्रेन ने बाक़ायदा सीटी वग़ैरा बजाई और धीमी-धीमी दुलकी चाल से चल निकली।

एक तरफ़ पहाड़ थे और दूसरी तरफ़ नदी थी। नदी के किनारे-किनारे ही लाइन

बनी थी। कहीं-कहीं ट्रेन इस तरह बलखाती थी कि इंजन दिखाई पड़ने लगता था। मैंने इंजन से निकलते धुएँ को देखा। बचपन में ट्रेन के स्टीम इंजन से निकलते धुएँ से उसका मुक़ाबला किया तो यह लगा कि इस धुएँ का रंग उतना काला नहीं है जितना हमारे यहाँ चलने वाली ट्रेनों का हुआ करता था।

कुछ देर चलने के बाद ट्रेन रुक गयी। बताया गया यहाँ आधा रास्ता पूरा हो रहा है। लोग ट्रेन से उतरने लगे। इंजन के पीछे वाला डिब्बा रेस्तराँ था। यहाँ चाय, कॉफ़ी, बीयर वग़ैरा बिक रही थी। पास से जाकर इंजन को देखा तो धुएँ का रंग समझ में आ गया। इंजन में कोयले की जगह लकड़ी जलाई जा रही थी। चालीस किलोमीटर पर ट्रेन फ़ाइनल स्टॉप पर रुक गयी। यहाँ नदी के किनारे खाने-पीने के रेस्टोरेंट बने थे। लकड़ी की बड़ी-बड़ी बेंचें और मेज़े पड़ी थीं। पर्यटक दोपहर का भोजन कर रहे थे। हमारी ट्रेन के यात्री भी उस भीड़ में शामिल हो गये।

मारामारोश से वापसी की यात्रा कुछ सुखद न थी। एक छोटी बस पर बैठे-बैठे पूरी रात काटनी पड़ी। लेकिन फिर यही सोचकर दिल को तस्कीन दी कि अगर आराम चाहिए था तो घर से निकले ही क्यों?

मैक्सिको
कोयोयकन की कबूतरी

"मैं 'सेल्फ़ पोर्ट्रेट' बनाती हूँ इसलिए कि ज़्यादातर अकेली होती हूँ और अपने से ज़्यादा किसी और को नहीं जानती।"

-(फ़्रिदा कालो)

संसार में सबसे ज़्यादा 'सेल्फ़ पोर्ट्रेट' बनाने वाले चित्रकारों में पहला नाम विश्वविख्यात मैक्सिकन चित्रकार फ़्रिदा कालो (1907-1954) का है।

फ़्रिदा कालो के पुश्तैनी मकान और अब संग्रहालय 'नीली कोठी' के सामने दर्शकों की लाइन लगी थी। धूप में इलाका चमक रहा था। लोगों की भीड़ लगातार बढ़ती जा रही थी। मैक्सिको की हिन्दी छात्रा हेओ ने बताया कि फ़्रिदा की लोकप्रियता धीरे-धीरे बढ़ रही है।

मैं फ़्रिदा के बारे में कम जानता था पर इतना मालूम था कि मैक्सिकन 'मोनोलीज़ा' पेन्ट करने वाली फ़्रिदा मैक्सिको आनेवालों के साथ हवाई अड्डे से साथ हो लेती हैं और फिर हर जगह साथ रहती हैं। मैक्सिकन 'मोनोलीज़ा' (फ़्रिदा की एक 'सेल्फ़ पोर्ट्रेट') एक तरह से मैक्सिको का राष्ट्रीय चिन्ह बन गयी है। एयरपोर्ट की दीवारों पर आगंतुकों का स्वागत करते चित्र फ़्रिदा शैली के हैं। प्रकृति, पशु, मनुष्यों और मिथकों की समान उपस्थिति इन चित्रों की बड़ी विशेषता है जिसमें लोक परम्परा और स्थानीयता आकर जुड़ जाती है।

हेओ लाइन से निकलकर संग्रहालय के गेट तक यह देखने गयी कि इतनी देर क्यों लग रही है। फिर वापस आकर उसने बताया कि एक बड़े ग्रुप की वजह से देर हो रही है। अब रास्ता साफ़ है और जल्दी ही हमारा नम्बर आ जायेगा।

— "फ़्रिदा, युवाओं में बहुत लोकप्रिय हैं," हेओ ने लाइन में लगे युवाओं को देखकर कहा।

— "क्या वजह है?"

— "फ़्रिदा की जीवनशैली और मान्यताएँ...युवाओं को आकर्षित करती हैं... उनकी चित्रशैली भी अनूठी है...पूरी तरह उनकी अपनी है...उनके पति मशहूर मैक्सिकन पेंटर डिएगो रिवेरा (Diego Rivera) थे और उन्होंने फ़्रिदा से कहा था कि एक दिन फ़्रिदा को बहुत बड़ा चित्रकार माना जायेगा।"

— "वे दिन शायद आ गये हैं," मैंने भीड़ देखकर कहा।

— "हाँ, सब यही मानते हैं।"

— "बहुत लम्बे समय तक विवादास्पद और मैक्सिको तक सीमित रहीं फ़्रिदा को अब अंतरराष्ट्रीय मान्यता मिल चुकी है। फ़्रिदा ने कुल 140 पेंटिंग बनाई हैं। इसके अलावा कई दर्जन ड्रॉइंग्स भी हैं। इन पेंटिंग्स में 55 'सेल्फ़ पोर्ट्रेट हैं...उन्होंने कहा है...मैंने सपनों को नहीं अपने यथार्थ को पेन्ट किया है," हेओ ने ब्रोशर पढ़कर बताया।

लाइन आगे बढ़ ही नहीं रही थी और जिज्ञासा बढ़ती चली जाती थी। खुदा-खुदा करके काउण्टर पर आ गये। मैक्सिकन सिक्के पेसू में टिकट का दाम 120 था। यह थोड़ा महँगा ही माना जायेगा। एक मैक्सिकन पेसू लगभग तीन रुपये के बराबर है। इस तरह टिकट का दाम साढ़े तीन सौ रुपये हुआ। हेओ ने बताया कि छात्रों के लिए टिकट सस्ता है लेकिन शनिवार, रविवार को टिकट का दाम बढ़ जाता है। यह भी बताया कि संग्रहालय की देख-भाल और विस्तार के काम के लिए इस पैसे का उपयोग किया जाता है।

'नीली कोठी' या 'ब्लू हाउस' की गिनती अब एक ऐसे तीर्थ के रूप में होती है जिसके दर्शन करना हर मैक्सिको आनेवाले के लिए आवश्यक है। इसी कोठी में फ़्रिदा का बचपन बीता था और जीवन के 47 अच्छे-बुरे साल भी यहीं गुज़रे थे। यहीं विवाह हुआ, यहीं तलाक हुआ था। यहीं प्रेम हुआ था। यहीं उन्होंने पेंटिंग की थी और यहीं मृत्यु हुई थी। मैक्सिको के कोयोयकन (Coyoacan) इलाके में फ्रांसीसी तर्ज़ पर यह कोठी फ़्रिदा के पिता ने 1909 में बनवाई थी। जिसमें आँगन, पीछे का बाग़ प्रमुख हैं। दो मंज़िला कोठी में ऊपर के कमरों में फ़्रिदा का स्टूडियो और रहायशी कमरे हैं। संग्रहालय बनाने के लिए कुछ परिवर्तन किए गये पर मूल ढाँचा वैसे-का-वैसा ही बना हुआ है। संग्रहालय की लोकप्रियता का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसे देखने पच्चीस हज़ार लोग प्रति माह आते हैं। इस तरह यह मैक्सिको के लोकप्रिय संग्रहालयों में गिना जाता है। वैसे भी मैक्सिकन संग्रहालयों के शौक़ीन हैं। कहा जाता है कि मैक्सिको सिटी में जितने संग्रहालय हैं उतने संसार के किसी दूसरे शहर में नहीं हैं।

फ़्रिदा कालो के जीवन को जाने बिना उनकी कला को जानना बहुत कठिन है क्योंकि उनका काम उनके जीवन से जुड़ा हुआ है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ (1907) में जन्मी फ़्रिदा ने दूसरे दशक में होश सँभाला होगा। यह दशक पूरी दुनिया में मार्क्सवाद और रूस की क्रांति के 'सेलीब्रेशन' का दशक था। पूरी दुनिया के छात्र, बुद्धिजीवी, कलाकार, श्रमिक मार्क्सवाद और रूस की क्रांति के गुण गाया करते थे। फ़्रिदा ने भी इसी माहौल में आँखें खोली थीं। मैक्सिको में भी वामपंथी आन्दोलन अपनी जड़ें जमा चुका था। यह बहुत रोचक तथ्य है कि मैक्सिको में बंगाल के वामपंथी विचारक एम.एन. राय (1887-1954) ने सोशलिस्ट वर्कर्स पार्टी की स्थापना की थी जिसका नाम 1919 में बदलकर मैक्सिकन कम्युनिस्ट पार्टी कर दिया गया था। 1925 में इस पार्टी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था जो 1935 तक जारी था। यह वह समय था जब मार्क्सवाद और वामपंथ पूरी तरह मैक्सिको के कलाकारों, बुद्धिजीवियों की 'गाइडिंग फ़ोर्स' बन चुका था। फ़्रिदा न केवल वामपंथी विचारों से प्रभावित थीं बल्कि सक्रियता से आन्दोलनों में भाग लिया करती थीं। जीवन के अंतिम दिनों में बीमारी की हालत में भी उन्होंने

ग्वाटेमाला में सी.आई.ए. द्वारा आयोजित तख्ता पलट (1954) कार्यवाही के विरोध-प्रदर्शन में भाग लिया था। अपने समकालीन वामपंथी नेताओं और संस्कृति कर्मियों से उनके अच्छे सम्बन्ध थे। यह भी माना जाता है कि विख्यात कम्युनिस्ट क्रांतिकारी लियो ट्राटस्की (1879-1940) से भी उनके प्रेम सम्बन्ध थे। उनके प्रेमी और बाद में पति डिएगो का भी मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान था।

फ़्रिदा के अनुसार उनके बचपन में घर का वातावरण बहुत अधिक दु:खद रहा करता था। उनकी माँ कर्मठ, कृपालु और बुद्धिमान होने के साथ-साथ चतुर, कठोर और बहुत धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। हाँ अपने पिता के बारे में फ़्रिदा ने स्पष्ट लिखा है कि वे उनके लिए प्रेरणा का सबसे बड़ा स्रोत थे। छः साल की उम्र में फ़्रिदा को पोलियो हो गया था जिसकी वजह से एक पैर दूसरे के मुक़ाबले कमज़ोर और पतला हो गया था। इससे न केवल उनकी चाल पर फ़र्क़ पड़ा था बल्कि सामाजिक और मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़े थे। छः साल की बच्ची को लँगड़ेपन पर चिढ़ाने वाले बहुत थे। इस घटना ने उन्हें अंतरमुखी बना दिया था। वह अकेले में रहना पसन्द करने लगी थीं। दोस्तों की संख्या कम-से-कम हो गयी थी। फ़्रिदा के मन में आयी हीन भावना की ग्रंथियों को दूर करने के लिए उनके पिता उन्हें घुड़सवारी से लेकर तैराकी तक सिखाते थे ताकि वह अपने को दूसरों की तरह सामान्य और सहज महसूस कर सकें।

फ़्रिदा को खुश रखने के लिए उनके पिता ने फ़्रिदा का परिचय अपने पेशे फ़ोटोग्राफ़ी के अतिरिक्त साहित्य और दर्शनशास्त्र की दुनिया से भी करा दिया था। वह फ़ोटोग्राफ़ी के काम में अपने पिता की मदद करती थीं। बीमारी की वजह से फ़्रिदा का स्कूल छूट गया था। लेकिन कुछ साल बाद फ़्रिदा को एक विशेष स्कूल में प्रवेश मिल गया जहाँ उनकी दोस्ती ऐसे छात्रों से हो गयी थी जो अपने को सोशलिस्ट कहते थे। यहीं फ़्रिदा का पहला परिचय मार्क्सवाद और समाजवाद से हुआ था जो धीरे-धीरे बढ़ता चला गया था। यहीं उनका पहला प्रेम अपने सहपाठी आलेख़ांद्रो गोमेज़ आरियास से हुआ था।

बदनसीबी ने फ़्रिदा का पीछा कभी नहीं छोड़ा। मरते दम तक वह छाया की तरह उनके साथ रही। कॉलेज के दिनों में ही एक भयानक सड़क दुर्घटना घटी जब वह अपने प्रेमी गोमेज़ आरियास के साथ घर लौट रही थीं। इस दुर्घटना में कुछ लोग मर गये थे और वह बहुत बुरी तरह घायल हो गयी थीं। कई महीने अस्पताल में रहने के बाद वह घर में भी कई महीने बिस्तर पर पड़ी रही थीं। लम्बे चले इलाज के बाद भी वह ठीक नहीं हो सकी थीं। उनकी कमर का दर्द नहीं गया था। उनके शरीर के चारों तरफ़ प्लास्टर चढ़ा दिया गया था और वह बिस्तर पर लेटी रहने पर मजबूर हो गयी थीं। इलाज लम्बा खिंचता चला गया। भविष्य एक बड़े शून्य के रूप में उनके सामने आने लगा था। पर कुछ-न-कुछ तो करना ही था।

फ़्रिदा ने लेटे-लेटे चित्र बनाने का अभ्यास किया था। उनके बहुत से चित्र इसी तरह बनाये गये हैं। हेओ ने बताया कि फ़्रिदा की माँ ने बेड के ऊपर एक आईना लगवा दिया था जिसमें फ़्रिदा अपने को देख सकती थी। और बेड के सामने कैन्वस लगाने का ट्राइपॉड और रंग रहा करते थे। फ़्रिदा आइने में देखकर कैन्वस पर अपने सेल्फ़ पोर्ट्रेट बनाया करती थीं।

— “कई वर्षों की पीड़ा, अकेलेपन और असहाय होने का भाव था जिसने फ़्रिदा को फ़्रिदा बनाया,” हेओ ने धीरे से कहा था।

— “तो सिर्फ़ अपने पोर्ट्रेट बनाती थी?” मैंने पूछा।

— “हाँ अपने, अपनी बहनों के और अपने सहपाठियों के,” हेओ ने बताया।

— कला सीखने की कोई औपचारिक ट्रेनिंग तो नहीं थी फ़्रिदा के पास?

— नहीं...अपने पिता से कुछ...और कुछ अपने पति डिएगो से...और कुछ इधर-उधर से सीखा था।

— फ़्रिदा कब तक बीमार रहीं?

— “मैंने पढ़ा है कि 1927 में फ़्रिदा कुछ बाहर निकलने काबिल हो गयी थीं। वह अपने कॉलेज के दोस्तों के साथ छात्र राजनीति में भी भाग लेने लगी थीं। इसी ज़माने में उसने मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी ज्वॉइन की थी।” हेओ मुझे म्यूज़ियम दिखाने से पहले शायद पूरी जानकारियाँ लेकर आयी थी।

संग्रहालय के अंदर भीड़ लगातार बढ़ती जा रही थी। लेकिन ऐसा नहीं था कि किसी को बढ़ती भीड़ से असुविधा होती। दर्शक जो कुछ देख रहे थे उन्हें पता था कि उनके पीछे भी कुछ लोग हैं जो वही देखना चाहते हैं जो वे देख रहे हैं। इसलिए लोग एक-दो मिनट के बाद आगे बढ़ जाते थे ताकि दूसरे लोग देख सकें। संग्रहालय में फ़ोटो लेने की अनुमति थी इसलिए दूसरों की तरह मैं भी धड़ाधड़ चित्र ले रहा था। चित्रों के माध्यम से 1920-30 की मैक्सिको सिटी भी उभर कर सामने आ रही थी।

सन् 1927 के आस-पास मैक्सिको सिटी संसार के निष्कासित कम्युनिस्टों का गढ़ बनी हुई थी। क्यूबा से लेकर इटली और अमेरिका तक के निष्कासित कम्युनिस्ट मैक्सिको सिटी में शरण ले रहे थे। यह स्वाभाविक था कि फ़्रिदा का परिचय उन सबसे हुआ होगा। इसी ज़माने में फ़्रिदा का परिचय मैक्सिको के बहुत नामीगिरामी और विशिष्ट चित्रकार डिएगो रिवेरा से हुआ जिनका मैक्सिको की कम्युनिस्ट पार्टी में भी बड़ा दबदबा था। इतने बड़े चित्रकार से परिचय होने के बाद फ़्रिदा के मन में यह विचार आना स्वाभाविक था कि उन्हें अपने चित्र दिखाये जायें और उनकी राय ली जाये। पूछा जाये कि उसमें चित्रकार बनने की प्रतिभा है भी या नहीं। एक दुबली-पतली सुंदर बीस साल की लड़की की चित्रकला में रुचि और उसके अनुरोध को देखकर बयालीस वर्षीय अनुभवी ‘वूमनाइज़र’ चित्रकार के मन में क्या विचार आये होंगे इसका अनुमान लगा लेना आसान है।

बहुत जल्दी नतीजा यह निकला कि दो पत्नियों के पति और बहुतेरी औरतों से सम्बन्ध रखने वाले डिएगो से फ़्रिदा प्रेम करने लगी। उसे डिएगो के बारे में सब मालूम था। प्रेम अंधा होता है—फ़्रिदा भी अंधी हो गयी थी। पर फ़्रिदा की माँ की आँखें थीं। उसे इस जोड़े पर सख़्त आपत्ति थी। वह जानती थी कि यह सम्बन्ध दूर तक नहीं चलेगा। फ़्रिदा और डिएगो के बीच बहुत अंतर था। डिएगो का वज़न 300 पाउण्ड था और उम्र 42 साल थी जबकि फ़्रिदा का क़द 5 फुट 3 इंच और वज़न 98 पाउण्ड था। लोग कहते

थे कि यह हाथी और कबूतरी की शादी है।

दोनों में बीस साल से अधिक उम्र का ही नहीं अनुभव का भी फ़र्क़ था। डिएगो के लिए प्रेम, औरत, शादी वग़ैरह चिरपरिचित शब्द थे और वह इनके सम्पर्क में कई बार आ चुका था तो फ़्रिदा के लिए ये पवित्र शब्द जीवन-मरण जैसे महत्त्वपूर्ण थे। इस शादी का ज़िक्र मैक्सिकन मीडिया में ही नहीं अतंरराष्ट्रीय मीडिया में भी हुआ था।

भावनात्मक स्तर पर ही नहीं बौद्धिक स्तर पर भी फ़्रिदा को डिएगो ने इतना प्रभावित किया था कि वह पूरी तरह बदल गयी थी। डिएगो का यह मानना था कि मैक्सिक महिलाएँ जो परम्परागत मैक्सिकन कपड़े नहीं पहनतीं...वे बौद्धिक और भावनात्मक स्तर पर एक विदेशी समुदाय पर आश्रित रहना चाहती हैं, उससे जुड़ना चाहती हैं। डिएगो के बहुत पक्के और सुचिंतित राष्ट्रीय और वामपंथी विचारों ने फ़्रिदा को इतना प्रभावित किया था कि उसने पश्चिमी ढंग के कपड़े पहनना तक छोड़ दिया था। वह चाहे पेरिस में हो या न्यूयॉर्क में, लंदन में हो या कोयोयकन में वह परम्परावादी मैक्सिकन पोशाकें पहनती थी। लम्बे-लम्बे स्कर्ट, तरह-तरह के लम्बे रंग-बिरंगे ब्लाउज़, कपड़े की परम्परागत टोपियाँ, गले में तरह-तरह की मालाएँ और अजीब से लगने वाले आभूषण, नया हेयर स्टाइल फ़्रिदा का ट्रेड-मार्क बन गया था। हो सकता है कि वह अपने पोलियो और दुर्घटनाग्रस्त शरीर को छिपाने के लिए ही ऐसा करती हो। लेकिन वह पूरी तरह बदल गयी थी। प्यार में उसने सब कुछ दे दिया था और सब कुछ पाना चाहती थी। फ़्रिदा ने लिखा है कि मेरे साथ दो बड़ी दुर्घटनाएँ हुईं...पहली तो वह थी जब सड़क पर एक गाड़ी से एक्सीडेंट हुआ और दूसरी जब मुझे डिएगो मिले।

वह उपनिवेशवाद का विरोध करती थीं। मार्क्सवाद पर उनका विश्वास और पक्का हो गया था। यह परिवर्तन उनकी कला पर भी प्रभाव डाल रहा था। चटकीले रंग, नाटकीय प्रतीक और मूल मैक्सिकन आदिवासी शैली उनके चित्रों में जगह बना रही थी। बंदर उनके चित्रों में झाँकने लगा था जो मैक्सिकन मिथकशास्त्र में 'हवस' का प्रतीक है।

कुल मिलाकर संग्रहालय में दस कमरे हैं। इमारत देखकर लगता है कि यह एक बार में नहीं बनी है। मतलब कुछ हिस्से पहले और कुछ बाद में बनाये गये होंगे। ग्राउण्ड फ़्लोर पर फ़्रिदा के प्रारंभिक और कम महत्त्वपूर्ण चित्र लगे हैं। यह कमरा दरअसल बैठक था जहाँ डिएगो और फ़्रिदा स्थानीय और विदेशी मित्रों से मिला करते थे। दीवार पर उन प्रख्यात लोगों की सूची लगी हुई है जो इस बैठक में कभी आये थे। कमरे में डिएगो की भी कुछ कलाकृतियाँ रखी हैं। इसी कमरे में प्राचीन गहनों के डिज़ाइन देखकर लगता है कि उस सभ्यता के लोगों का सौन्दर्यबोध कितना विकसित रहा होगा। अगले कमरे में फ़्रिदा के समकालीन चित्रकारों के चित्र देखे। हेओ उन चित्रकारों के बारे में बताती रही और मैं सुनता रहा क्योंकि उनके बारे में मेरी जानकारी शून्य के बराबर थी।

रसोई और खाने के कमरे देखकर मज़ा आ गया। मुँह में पानी आ गया। वैसे आनी चाहिए थी 'टिकाला' जो मैक्सिको की राष्ट्रीय शराब है। बहरहाल रसोई और खाने का कमरा पक्के मैक्सिकन शैली में बने हैं। नीला और पीला रंग इधर-उधर बिखरा पड़ा था। अगले दो कमरे बर्तनों से भरे दिखाई पड़े। इसमें शीशे से लेकर मिट्टी तक के बर्तन हैं। ये बर्तन मैक्सिको के अलग-अलग इलाकों से हैं। कुछ 'पेपरमाशी' की कृतियाँ भी हैं।

डायनिंग रूम के बाद डिएगो का बेडरूम है जिसमें उनके कपड़े और दीगर सामान रखा है।

—प्रोफ़ेसर आपको प्यास तो नहीं लग रही? पानी तो नहीं पियेंगे? हेओ ने पूछा और मुझे लगा कि हाँ मुझे प्यास लग रही है।

—मेरे पास पानी है।

हेओ ने पानी की बोतल मुझे दे दी।

हेओ मुझे प्रोफ़ेसर कहती है क्योंकि उससे मेरा परिचय उसकी हिन्दी की प्रोफ़ेसर उमा ठुकराल ने कराया था। उमा जी पिछले बीस साल से मैक्सिको सिटी में हिन्दी पढ़ा रही हैं। उनसे मेरा परिचय भी अजीब ढंग से हुआ था। जाड़े की एक रात थी। ग्यारह बज रहे थे। अचानक फ़ोन की घंटी बजने लगी। मैंने फ़ोन उठाया। उधर से एक महिला की आवाज़ में पूछा गया—"क्या इस समय मैं आपसे बात कर सकती हूँ।"

मैंने कहा—ज़रूर।

यहीं से प्रोफ़ेसर उमा ठुकराल से जान-पहचान हुई। वे मेरा नाटक "जिस लाहौर..." स्पेनी भाषा में अनुवाद कर रही थीं और मेरी कहानी "शाह आलम कैम्प की रूहें" स्पेनी में अनुवाद कर चुकी थीं। पहली ही मुलाक़ात में पता चला कि वह मैक्सिको में हिन्दी पढ़ाती हैं तो मेरा लालच उभर कर सामने आ गया। मैंने कहा था—"मैं अगर मैक्सिको आऊँ तो क्या आप मेरा परिचय स्थानीय लोगों से करा सकती हैं? गाइड कर सकती हैं?"

उन्होंने हामी भर ली थी। दो साल बाद मैं मैक्सिको सिटी में था और उन्होंने अपनी तीन छात्राओं से परिचय कराया था जिसमें एक हेओ है। हेओ का पूरा नाम हेओर्गीना लोपेज़ माज़ोन है। चूँकि मैं हेओ की प्रोफ़ेसर का मित्र हूँ इसलिए प्रोफ़ेसर ही हुआ। जैसे मामा के मित्र को सब मामा कहने लगते हैं।

पानी पीकर आगे बढ़े तो हम डिएगो के बेडरूम में पहुँच गये। जहाँ उनके कपड़े, हैट, छड़ी और दीगर सामान उसी तरह रखा हुआ था जैसा डिएगो के जीवनकाल में था। सीढ़ियाँ चढ़ने के बाद हम लोग ऊपरवाले कमरे में आ गये। इन दो कमरों में से एक फ़्रिदा का स्टूडियो है जो बिलकुल वैसा ही है जैसा फ़्रिदा ने उसे छोड़ा था। बड़ी खिड़कियों से अंदर रौशनी आ रही थी। दो मेज़ों पर छोटी-छोटी शीशियों में रंग रखे थे। कुछ रंग के ट्यूब भी सलीके से धरे दिखाई पड़े। ईज़ल पर वह पेंटिंग लगी हुई थी जिसे फ़्रिदा मृत्यु से पहले या कहें बिस्तर में लग जाने से पहले बना रही थीं। यह एक 'स्टिल लाइफ़' है। अधूरी बनी तस्वीर फ़्रिदा के अधूरे जीवन की कहानी कह रही थी। तरह-तरह के ब्रुश और दूसरे उपकरण भी नज़र आ रहे थे। कैन्वस के सामने फ़्रिदा की व्हीलचेयर रखी है। जीवन के अंतिम दिनों में वे व्हीलचेयर पर ही इधर-उधर आ-जा पाती थीं। स्टूडियो को देखकर यह नहीं लगता कि यह किसी ऐसे आर्टिस्ट का स्टूडियो है जो अब जीवित नहीं है। पूरा वातावरण, खिड़कियों से आती धूप, बाहर लहराते हुए हरे पेड़, चटकीले रंग, सफ़ेद चमकता हुआ फ़र्श, ईज़ल पर लगी तस्वीर से यही अंदाज़ा लगता है कि फ़्रिदा अभी-अभी उठकर गयी हैं और अभी आयेंगी...सब दर्शकों को देखकर मुस्कुरायेंगी और चुपचाप

अपने काम में लग जायेंगी...फिर धीरे-धीरे अदृश्य हो जायेंगी...

बेडरूम के एक कोने में फ़्रिदा की अस्थियाँ (Ashes) रखी हैं। इसके साथ अंतिम संस्कार को ले जाते समय चेहरे के चारों ओर लगाने वाला 'फ़्यूनिरल मास्क' रखा है। कुछ निजी सामान के साथ-साथ ऊपर वह आइना भी लगा दिखाई पड़ता है जिसमें देखकर फ़्रिदा अपने चित्र बनाया करती थीं। बेड के ऊपर एक मृत बालक की तस्वीर लगी है। दुर्घटनाओं के कारण कुछ ऐसा हुआ था कि फ़्रिदा माँ नहीं बन सकती थीं। कई बार गर्भपात होने के कारण उनके मन पर इसका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। मृत बालक और गर्भपात फ़्रिदा के कई चित्रों की 'थीम' है। बेडरूम की दीवार ही पर स्टालिन, लेनिन, मार्क्स, एंजिल और माओ की तस्वीरें लगी हैं। नितांत व्यक्तिगत और सामाजिक, राजनीतिक प्रतिबद्धता का यह संगम चकित कर देता है।

अपने आपको पूरी तरह शारीरिक और मानसिक तौर पर डिएगो के हवाले कर देने के बाद भी फ़्रिदा को वह नहीं मिला जिसकी उम्मीद थी। डिएगो के प्रति उनके प्रेम के बहुत जटिल आयाम थे। डिएगो को वे 'मेरा बच्चा', 'मेरा प्रेमी' और 'मेरा संसार' कहा करती थीं। लेकिन उनकी डायरी में ऐसे प्रसंग भरे पड़े हैं जो बताते हैं कि उन्होंने जब-जब मुट्ठी खोली तब-तब वहाँ धूल ही मिली। फ़्रिदा के जीवनी लेखक बताते हैं कि डिएगो और फ़्रिदा दोनों ही तुनक-मिज़ाज थे। अपनी-अपनी इच्छा के विरुद्ध होता नहीं देख सकते थे। फ़्रिदा यह आशा करती थीं कि डिएगो पूरी तरह उनके प्रति समर्पित हो, जैसे कि वह उनके प्रति है, पर ऐसा नहीं था। डिएगो के सम्बन्ध दूसरी स्त्रियों से लगातार बनते और समाप्त होते रहे। धीरे-धीरे यह स्थिति फ़्रिदा के लिए असहनीय होती चली गयी थी।

शारीरिक और मानसिक रूप से त्रस्त फ़्रिदा ने विरोध के रूप में कुछ ऐसे क़दम उठाये जो डिएगो को बेचैन करने लगे। डिएगो जानता था कि फ़्रिदा 'बाईसेक्सुअल' है और उसके सम्बन्ध कुछ स्त्रियों के साथ भी हैं। वह इसे सहन करता था लेकिन जब फ़्रिदा के सम्बन्ध पुरुषों के साथ बनने लगे और डिएगो को यह पता चला कि फ़्रिदा के सम्बन्ध अमेरिकन चित्रकार और डिज़ाइनर इसामा नोगुची (Isama Noguchi) के साथ हैं तो वह कठोर हो गया था। दूसरी ओर जब फ़्रिदा को यह पता चला कि डिएगो के सम्बन्ध उसकी छोटी बहन क्रिस्टीना के साथ बन गये हैं तो वह बहुत अधिक गुस्से में आ गयी थी।

अपने वैवाहिक जीवन से दुःखी, पति की बेवफ़ाई से आहत और बीमारियों से जूझती फ़्रिदा के जीवन में एक नया मोड़ उस समय आया जब सोवियत यूनियन के विख्यात तानाशाह जोज़फ़ स्टालिन (1887-1953) के 'संगीन अपराधी' लियो ट्राटस्की (1879-1940) अपनी जान बचाने की कोशिश में छिपते और भागते हुए मेक्सिको पहुँचे। स्टालिन के प्रभाव और आतंक के कारण संसार के कई बड़े देश ट्राटस्की को राजनैतिक संरक्षण देने से मुकर चुके थे। डिएगो ने किसी-न-किसी तरह मैक्सिको की सरकार को इस बात पर तैयार कर लिया था कि वह ट्राटस्की को राजनीतिक शरण दे।

सन् 1937 में जब ट्राटस्की मैक्सिको की बंदरगाह पर पहुँचे तो वे और उनकी पत्नी नातालिया जहाज़ से नहीं निकल रहे थे। वे बाहर आने से डर रहे थे। उनको डर था कि स्टालिन के हत्यारे यहाँ उनकी हत्या कर सकते हैं। पर जब वे आश्वस्त हो गये कि उन्हें लेने सरकारी अधिकारियों के साथ उनके समर्थक और हमदर्द आये हैं तब वे जहाज़ से

बाहर आये थे। ट्राटस्की के स्वागत के लिए फ़्रिदा स्वयं बंदरगाह पर मौजूद थीं। वैसे कायदे से ट्राटस्की को रिसीव करने के लिए डिएगो को जाना चाहिए था क्योंकि उस समय उससे अधिक 'हाई-प्रोफ़ाइल' कम्युनिस्ट मैक्सिको में नहीं था। पर वह बीमारियों और ऑपरेशन के कारण जा नहीं सका था।

उस समय ट्राटस्की वामपंथी बुद्धिजीवियों और कलाकारों में एक अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त नाम था। वह सोवियत क्रांति का महान योद्धा, लाल सेना का सर्वोच्च कमाण्डर, पॉलित ब्यूरो का सदस्य और एक समय लेनिन के बाद नम्बर दो कम्युनिस्ट नेता हुआ करता था। पर सत्ता संघर्ष में स्तालिन ने उसे हरा दिया था और अब उसकी जान का दुश्मन हो गया था।

ट्राटस्की जैसे मेहमान को रखना किसी के लिए भी गौरव का विषय हो सकता था। फ़्रिदा और डिएगो ने ट्राटस्की को 'ब्लू हाउस' में रखा। यह एक अंतरराष्ट्रीय ख़बर बन गयी थी। ट्राटस्की के समर्थक उसकी पूरी सुरक्षा करते थे और फ़्रिदा उसके आदर सत्कार में कोई कसर न छोड़ती थी।

यह वही समय था जब फ़्रिदा की छोटी बहन क्रिस्टीना और डिएगो का प्रेम-प्रसंग चल रहा था और डिएगो ने उसे एक अलग मकान दे रखा था। फ़्रिदा के मन में यह फांस इतनी गहरी उतर गयी थी कि उसने डिएगो से 'बदला लेने' का निर्णय किया और उसकी नज़र ट्राटस्की पर पड़ी। पूरा जीवन संघर्षों और पिछले नौ-दस वर्षों की भाग-दौड़, मानसिक यंत्रणा, प्रियजनों की स्तालिन द्वारा हत्याओं का दुःख, भय, अपमान, निराशा और उम्र के आखिरी पड़ाव पर प्रेम-संभावना से शून्य ट्राटस्की को जब 28 वर्षीय सुंदर और बुद्धिमान फ़्रिदा का यह इशारा मिला होगा कि वह उससे प्रेम करती है तो ट्राटस्की को कैसा लगा होगा। इस पर कई किताबें लिखी जा सकती हैं।

जल्दी ही दोनों का प्रेम परवान चढ़ने लगा। फ़्रिदा और ट्राटस्की किताबों के बीच रखकर एक-दूसरे को प्रेम पत्र देने लगे। ट्राटस्की और फ़्रिदा अंग्रेज़ी जानते थे लेकिन डिएगो और ट्राटस्की की पत्नी नातालिया अंग्रेज़ी नहीं जानते थे। इसका पूरा फ़ायदा प्रेम करने वाली जोड़ी उठाती थी। ट्राटस्की और फ़्रिदा सबके सामने अंग्रेज़ी में प्यार भरी मीठी-मीठी बातें किया करते थे। फ़्रिदा अपने नये प्रेमी को प्यार से 'कुच्चीदाढ़ी' कहा करती थी और कभी-कभी उसे 'बूढ़ा' कहकर भी पुकारती थी। ट्राटस्की के जन्मदिन पर फ़्रिदा ने अपना एक चित्र बनाकर भी उसे भेंट किया था।

प्रेमियों की मिलन स्थली वह मकान बन गया था जो डिएगो ने अपनी अत्यंत युवा प्रेमिका फ़्रिदा की बहन को दिया था। धीरे-धीरे यह प्रेम-प्रसंग जग ज़ाहिर हो गया था। शायद फ़्रिदा इसे छिपाना भी नहीं चाहती थी। जिस तरह यह प्रेम शुरू हुआ था उसी तरह धीरे-धीरे खत्म हो गया। फ़्रिदा के जीवनीकार बताते हैं कि ट्राटस्की के आग्रह पर फ़्रिदा ने उसके प्रेमपत्र वापस कर दिये थे जिन्हें शायद ट्राटस्की ने जला दिया था।

सम्बन्धों की इन जटिलाताओं का नतीजा यह निकला कि 1939 में फ़्रिदा और डिएगो का तलाक़ हो गया। लेकिन गहरे प्रेम सम्बन्ध ऐसे थे और दोनों के प्रति एक-दूसरे के लिए इतनी गहरी भावनाएँ थीं कि एक-दूसरे की अनगिनत बेवफ़ाइयों के बाद भी प्रेम

बचा रहा और शादी की तरह तलाक़ भी लम्बा न चल सका। लगभग एक साल बाद ही दिसम्बर 1940 में उन्होंने फिर शादी कर ली।

बीमारियों और मुसीबतों ने कभी फ़्रिदा का पीछा नहीं छोड़ा। 1952 के आस-पास उनके पैर में घातक गैंगरीन हो गयी थी जिसके नतीजे में उनका सीधा पैर घुटने से काट दिया गया था। इस ऑपरेशन से उनका 'डिप्रेशन' बहुत बढ़ गया था। इसी समय फ़्रिदा को यह सूचना मिली थी कि डिएगो एक नया प्रेम कर रहा है। निराशा की चरम स्थिति में फ़्रिदा ने ज़्यादा 'स्लीपिंग पिल्स' खाकर आत्महत्या की कोशिश भी की थी।

फ़्रिदा ने डायरी (फ़रवरी 1954) में लिखा है—'उन्होंने मुझे शताब्दियों की यंत्रणा दी है, इस समय मेरे पास कोई तर्क नहीं है, मैं अपनी हत्या करने की कोशिश कर रही हूँ। पर डिएगो के कारण मैं ऐसा नहीं कर रही क्योंकि एक व्यर्थ विचार यह है कि वह मुझे 'मिस' करेगा।' फ़्रिदा का यह विचार पता नहीं कितना सही था लेकिन कुछ ऐसे प्रसंग ज़रूर हैं जिनसे यह साबित होता है कि फ़्रिदा के प्रति डिएगो के मन में बहुत जटिल, कोमल भावनाएँ थीं। एक बार फ़्रिदा के एक चित्र को देखकर विश्वविख्यात चित्रकार पिकासो ने डिएगो के सामने फ़्रिदा की प्रशंसा की थी जिसे सुनकर डिएगो की आँखें भर आयी थीं।

जीवन के अंतिम दिनों में फ़्रिदा बिस्तर से लग गयी थीं। साँस की भयानक बीमारी ने रही-सही ताक़त भी ख़त्म कर दी थी। लेकिन इस दशा में भी उन्होंने सी.आई.ए. के खिलाफ़ प्रदर्शन में भाग लिया था। उन्हें अपनी मृत्यु का एहसास हो गया था। मिलने-जुलने वालों से और अपनी डायरी में वह मौत के काले 'ऐंजिल' का उल्लेख करती थीं। उनकी अंतिम ड्रॉइंग एक काले ऐंजिल की ड्रॉइनिंग है जिस पर लिखा था—'मैं आशा करती हूँ कि 'चले जाना' सुखद होगा।'

12 जुलाई 1954 की रात फ़्रिदा को तेज़ बुखार और दर्द था। देखभाल करने वाली नर्स दवाइयाँ देकर जा चुकी थी। कुछ दवाइयाँ फ़्रिदा को अपने आप भी खानी थीं। वह रात फ़्रिदा की अंतिम रात थी।

चूँकि पोस्टमार्टम नहीं हुआ था इसलिए मृत्यु का असली कारण पता नहीं चल पाया। मेडिकल रिपोर्ट में उनकी मृत्यु का कारण फेफड़ों में रुकावट (Pulmonary Embolism) बताया गया था। लेकिन यह भी कहा जाता है शायद अधिक 'पेनकिलर' और दूसरी दवाइयाँ लेकर फ़्रिदा ने आत्महत्या की थी।

उसी दिन शाम को फ़्रिदा का मृत शरीर कम्युनिस्ट झण्डे में लपेटकर पलासिओ दे बयास अर्तेस (Palacio de Beller Artis) में अंतिम संस्कार से पहले रखा गया था।

फ़्रिदा ने पूँजीवाद से जन्मे औद्योगीकरण की बड़ी कड़ी आलोचना की है। उनका 'सेल्फ़ पोर्ट्रेट बिटवीन मैक्सिको एण्ड यूनाइटेड स्टेट्स' औद्योगीकरण के कारण जन्मी अमानवीय स्थितियों को सामने लाता है। उनका दूसरा चित्र 'माई ड्रेस हैंगस् देयर' अमेरिकी साम्राज्यवाद की मार्क्सवादी आलोचना का अच्छा उदाहरण है। फ़्रिदा के सभी जीवनीकार यह मानते हैं कि वह वामपंथी राजनीति और मार्क्सवाद से प्रभावित थीं। आज फ़्रिदा अपने क्रांतिकारी विचारों के कारण प्रति-संस्कृति का प्रतीक बन चुकी हैं।

लातीनी अमेरिकी देशों में फ़्रिदा और ची ग्वेरा के चित्रों पर आधारित ऐसे पोस्टर बहुत लोकप्रिय हैं जो प्रति-संस्कृति के मुद्दों को सामने लाते हैं।

समय बड़ा निर्मम हैं। जीते जी फ़्रिदा कालो एक विख्यात चित्रकार डिएगो रिवेरा की पत्नी के रूप में स्वीकार की जाती थीं लेकिन समय ने इस तथ्य को लगभग पलट दिया है। आज डिएगो विश्वविख्यात पेन्टर फ़्रिदा कालो के पति के रूप में याद किए जाते हैं। डिएगो को यह लगता भी था और उन्होंने फ़्रिदा से कहा भी था कि एक दिन वह बड़ी चित्रकार के रूप में स्थापित होगी। फ़्रिदा की चित्रकला के बारे में कहा जाता है कि उनके चित्र ज़मीन से जुड़े हुए हैं और मैक्सिको-चित्रकला की परम्परा के अनुसार वे यथार्थ और फैंटेसी के बीच रहते हैं। जैसे ये दोनों एक हों और दोनों ही यथार्थ हों।

फ़्रिदा ने बहुत कम चित्र बनाये हैं और कम प्रदर्शनियाँ की हैं। फ़्रिदा का पहला 'वेन मैन शो' 1938 में अमेरिका की जूलियन लेवी गैलरी में हुआ था। यहाँ उनका परिचय हंगेरियन फ़ोटोग्राफ़र निकोलस मुरेय (Nickolas Murry) से हुआ था जिसके साथ फ़्रिदा के प्रेम सम्बन्ध दस साल रहे थे।

कला समीक्षकों और कलाकारों ने उनके काम को पर्याप्त महत्त्व दिया था। विख्यात लेखक, कवि, कला समीक्षक और सुर्रियलिज़्म (Surrealisim) के प्रवर्तक आद्रे ब्रेसां (Andr'e Berton) के निमंत्रण पर वह 1939 में अपनी प्रदर्शनी लेकर पैरिस गयी थीं। ब्रेसां ने फ़्रिदा के चित्रों को सुर्रियलिज़्म के अंतर्गत माना है जबकि फ़्रिदा ने लिखा है, 'मैं नहीं जानती कि मेरी पेन्टिंग 'सुर्रियलिस्ट' हैं या नहीं...पर इतना जानती हूँ कि वे मेरी बेबाक अभिव्यक्ति (फ्रैंक एक्सप्रेशन) हैं।' संसार की प्रसिद्ध गैलरी लूर्व (Louvre) ने उनका एक चित्र खरीदा था जो किसी भी चित्रकार के लिए अंतरराष्ट्रीय मान्यता है।

लूर्व गैलरी द्वारा चित्र खरीद लिये जाने के बाद भी फ़्रिदा कालो को मैक्सिको में वह मान्यता नहीं मिल पायी थी जो मिलनी चाहिए थी। बीसवीं शताब्दी के सातवें और आठवें दशक में स्थितियाँ बदल रही थीं। मैक्सिको में 'नियोमैक्सिकनीसूमो' (Neomexicanisomo) आन्दोलन शुरू हो गया था। कला और साहित्य के क्षेत्र में मैक्सिकन मूल जातियों की कला दृष्टि, लोकचेतना, राष्ट्र की पहचान और निजता पर बल देने वाले इस आन्दोलन ने पहली बार फ़्रिदा के महत्त्व को पहचाना था। 1982 में फ़्रिदा के चित्रों की प्रदर्शनी स्वीडन, जर्मनी, अमेरिका और मैक्सिको में हुई थी जिसके बाद फ़्रिदा को एक नये रूप में देखा गया। इसी समय पौल लेडुक (Paul Leduc) ने फ़्रिदा के जीवन पर आधारित फ़िल्म भी बनाई थी जिसे फ़िल्म समीक्षकों ने बहुत महत्त्व दिया था। फ़्रिदा की कई जीवनियाँ लिखी गयी हैं और कला समीक्षकों ने उनके चित्रों की व्याख्या और पुनर्व्याख्या पर बहुत ध्यान दिया है। फ़्रिदा के जीवन पर 2002 में फिर एक फ़िल्म बनाई गयी जिसे जुलिस टैमोस (Julis Taymos) ने डायरेक्ट किया था। इस फ़िल्म की लोकप्रियता का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि फ़िल्म ने 58 मिलियन डॉलर का व्यापार किया था। लंदन की प्रसिद्ध गैलरी टेट ने 2006 में और अमेरिका के विभिन्न शहरों की आर्ट गैलरियों में फ़्रिदा के चालीस चित्रों की प्रदर्शनियाँ लगी थीं।

जैसे-जैसे समय बीत रहा है फ़्रिदा का महत्त्व बढ़ता ही जा रहा है। आज फ़्रिदा

लातीनी अमेरिका की सबसे 'महँगी' चित्रकार हैं। सन् 2006 में न्यूयॉर्क की एक कला नीलामी में उनका एक पोर्ट्रेट पाँच मिलियन डॉलर का बिका था।

इससे पहले कोई भी मैक्सिकन कलाकृति इतनी महँगी नहीं बिकी थी। फ़्रिदा निश्चय ही विश्व की सबसे महँगी महिला चित्रकार हैं।

फ़्रिदा के चित्रों से अनेक नये विमर्श उभर रहे हैं। नारीवाद एक महत्त्वपूर्ण विमर्श है जिसके अंतर्गत फ़्रिदा की नयी और सारगर्भित व्याख्याएँ की जा रही हैं। माना जाता है कि फ़्रिदा ने नारी जीवन में छिपे यथार्थ को पहली बार निर्भीकता से चित्रित किया है। यह यथार्थ उनके अपने अनुभवों की देन है। यद्यपि फ़्रिदा ने यह सब बहुत सोच-समझकर नहीं किया था लेकिन औरत का दर्द, उसकी शक्ति और संत्रास फ़्रिदा के चित्रों में बहुत प्रभावशाली ढंग से दर्शक को आकर्षित करते हैं। उनकी पेंटिंग 'मेरा जन्म' (माई बर्थ 1932) में बच्चे के जन्म को दर्शाया गया है। पश्चिमी दर्शकों के लिए यह चित्र आश्चर्य में डाल देने वाला कहा जाता है, क्योंकि पश्चिमी कला में प्रजनन के विषय पर ऐसे चित्र नहीं बनाये गये। यह चित्र अनकहे ढंग से नारी शक्ति के सबसे बड़े आयाम को उद्‌घाटित करता है। प्राचीन सभ्यताओं में इसकी बड़ी मान्यता थी। उपनिवेश बन जाने से पहले मैक्सिकन सभ्यताएँ भी नारी के इस रूप को महत्त्व देती थीं। भारतीय संस्कृति में भी नारी के माता-रूप को विविध प्रकार से साहित्य और कलाओं में अभिव्यक्त किया गया है। फ़्रिदा के चित्रों में 'स्व' की रक्षा के लिए नारी संघर्ष की भावना भी दिखाई पड़ती है। नारी शक्ति और नारी अधिकार के स्वर फ़्रिदा की कला में एक-दूसरे से मिल गये हैं। उनके चित्रों में 'नारी-पीड़ा' के बहुत मार्मिक प्रसंग भी दिखाई पड़ते हैं। फ़्रिदा तो यह मानती थीं कि यह उनकी अपनी पीड़ा है लेकिन कला समीक्षकों का मानना है कि इसके व्यापक संदर्भ हैं।

हम सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आये। यहाँ संग्रहालय की दुकान है जहाँ फ़्रिदा के पेंटिंग्स आदि खरीदी जा सकती हैं। एक कैफ़े है जो इतना भरा हुआ था कि बैठने की कोई जगह न थी। हम बाहर आ गये।

हेओ ने कहा—"प्रोफ़ेसर कोयोयकन मैक्सिको सिटी का बड़ा ऐतिहासिक इलाका है—यहाँ सोलहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक का इतिहास देख सकते हैं।"

इतिहास तो उतना समझ में नहीं आया लेकिन हरियाली, सुंदर पेड़, लताएँ, पार्क, हरे लॉन...कॉलोनियल समय की भव्य इमारतें, न्योक्लासिक शैली के मकान, 18वीं शताब्दी के दरवाज़े, पतली और शान्त गलियाँ...छोटे-छोटे सुंदर-सुंदर बाज़ार और खाने-पीने के अड्डे बहुत साफ़ और सुन्दर लगे।

लेकिन मन फ़्रिदा कालो में अटक गया था। उनके बारे में कहीं पढ़ा था कि उन्हें नाच-गाने का शौक था, शोर-शराबा पसंद था, उनके मित्रों और प्रेमियों की बड़ी संख्या थी, फिर भी वह भयावह होने की सीमा तक बहुत अकेली थीं।

❑❑❑